UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186055
UNIVERSAL
LIBRARY

अंधा युग

●

धर्मवीर भारती

कि ता ब म ह ल

पाटली प्रकाशन
आर्य कुमार रोड,
पटना-१

अंधा युग

कालिदास ने मेघदूत की प्रथम पंक्ति के
दूसरे शब्द द्वारा जिसका नाम
व्यंजित किया है,
उसी को

●

अंधा युग

धर्मवीर भारती

किताब महल
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९५५

रचनाकाल—सितम्बर १९५४

किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद
द्वारा प्रकाशित
अनुपम प्रेस, १७ ए जीरो रोड, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

'अन्धा युग' कदापि न लिखा जाता यदि उसका लिखना न लिखना मेरे बस की बात रह गई होती। इस कृति का पूरा जटिल वितान जब मेरे अन्तर में उभरा तो मैं असमंजस में पड़ गया। थोड़ा डर भी लगा। लगा कि इस अभिशप्त भूमि पर एक क़दम भी रक्खा कि फिर बच कर नहीं लौटूँगा!

पर एक नशा होता है—अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गहराइयों में उतरते जाने का, और फिर अपने को सारे ख़तरों में डाल कर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ कणों को बटोर कर, बचा कर, धरातल तक ले आने का—इस नशे में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुला-मिला रहता है कि उसके आस्वादन के लिये मन बेबस हो उठता है! उसी की उपलब्धि के लिये यह कृति लिखी गई।

एक स्थल पर आकर मन का डर छूट गया था। कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता, अन्धापन—इनसे हिचकिचाना क्या इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुये हैं तो इनमें क्यों न निडर धँसू! इनमें धँस कर

भी मैं मर नहीं सकता ! "हम न मरैं, मरिहै संसारा !"

पर नहीं, संसार भी क्यों मरे ! मैंने जब वेदना सब की भोगी है, तो जो सत्य पाया है, वह अकेले मेरा कैसे हुआ ! एक धरातल ऐसा भी होता है, जहाँ 'निजी' और 'व्यापक' का बाह्य अन्तर मिट जाता है। वे भिन्न नहीं रहते। 'कहियत भिन्न न भिन्न'।

यह तो 'व्यापक' सत्य है, जिसकी निजी उपलब्धि मैंने की है—अतः उसकी मर्यादा इसी में है कि वह पुनः व्यापक हो जाय.........

२३ सितम्बर १९५५ धर्मवीर भारती

●

अनुक्रम

स्थापना
अन्धा युग

पहला अंक
कौरव नगरी

दूसरा अंक
पशु का उदय

तीसरा अंक
अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य

अन्तराल
पंख, पहिये और पट्टियाँ

चौथा अंक
गांधारी का शाप

पाँचवाँ अंक
विजय; एक क्रमिक आत्महत्या

समापन
प्रभु की मृत्यु

निर्देश

इस दृश्य-काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उसके सफल निर्वाह के लिये महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। अधिकतर कथावस्तु 'प्रख्यात' है, केवल कुछ ही तत्व 'उत्पाद्य' हैं—कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ। प्राचीन पद्धति भी इसकी अनुमति देती है। स्थापना और समापन भी पुरानी परम्परा को नये परिवेश में प्रस्तुत करते हैं। दो प्रहरी, जो घटनाओं और स्थितियों पर अपनी व्याख्याएँ देते चलते हैं, बहुत कुछ ग्रीक कोरस के निम्न वर्ग के पात्रों की भाँति हैं, किन्तु उनका अपना प्रतीकात्मक महत्व भी है। कृष्ण के वधकर्ता का नाम 'जरा' था ऐसा भागवत में भी मिलता है, लेखक ने उसे वृद्ध याचक की प्रेत-काया मान लिया है।

समस्त कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है। बीच में अन्तराल है। अन्तराल के पहले दर्शकों को लम्बा मध्यान्तर दिया जा सकता है। मंच-विधान जटिल नहीं है। एक पर्दा पीछे स्थायी रहेगा। उसके आगे दो पर्दे रहेंगे। सामने का पर्दा अंक के प्रारम्भ में उठेगा और अक के अन्त तक उठा रहेगा। उस अवधि में एक ही अंक में जो दृश्य बदलते हैं उसमें बीच का पर्दा उठता गिरता रहता है। बीच का और पीछे का पर्दा चित्रित नहीं होना चाहिये। मंच की सजावट कम से कम होनी चाहिये। प्रकाश-व्यवस्था में अत्यधिक सतर्क रहना चाहिये।

दृश्य-परिवर्तन या अंक-परिवर्तन के समय कथा-गायन की योजना है। यह पद्धति लोक-नाट्य-परम्परा से ली गई है। कथानक की जो घटनाएँ मंच पर नहीं दिखाई जातीं, उनकी सूचना देने, वातावरण की मार्मिकता को और गहन बनाने या कहीं-कहीं उसके प्रतीकात्मक अर्थों को भी स्पष्ट करने के लिये यह कथा-गायन की पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। कथागायक दो रहने चाहिये : एक स्त्री और एक पुरुष। कथा-गायन में जहाँ छन्द बदला है, वहाँ दूसरे गायक को गायन-सूत्र ग्रहण कर लेना चाहिये। वैसे भी आशय के अनुसार, उचित प्रभाव के लिये, पंक्तियों को स्त्री या पुरुष गायकों में बाँट देना चाहिये। कथा-गायन के साथ अधिक वाद्य यन्त्रों का प्रयोग नहीं होना चाहिये। गायक-स्वर ही प्रमुख रहना चाहिये।

संवाद मुक्त छन्दों में है और अन्तराल में कितनी प्रकार की भी छन्द-योजना

से मुक्त वृत्तगन्धी गद्य का भी प्रयोग किया गया है। वृत्तगन्धी गद्य की ऐसी पंक्तियाँ अन्यत्र भी मिल जायँगी। लम्बे नाटक में छन्द बदलते रहना आवश्यक प्रतीत हुआ। अन्यथा एकरसता आ जाती। कुछ स्थलों को अपवाद स्वरूप छोड़ दें तो प्रहरियों का सारा वार्तालाप एक निश्चित लय में चलता है जो नाटक के आरम्भ से अन्त तक लगभग एक सी रहती है। अन्य पात्रों के कथोपकथन में सभी पंक्तियाँ एक ही लय की हों यह आवश्यक नहीं। जैसे एक बार बोलने के लिये कोई मुँह खोले किन्तु उसी बात को कहने में, मन में भावनाएँ कई बार करवटें बदल लें, तो उसे सम्प्रेषित करने के लिये लय भी अपने को बदल लेती है। मुक्त छन्द में कोई लिरिक प्रवृत्ति की कविता अलग से लिखी जाय तो छन्द की मूल योजना वही बनी रह सकती है, किन्तु नाटकीय कथन में इसे मैं बहुत आवश्यक नहीं मानता। कहीं-कहीं लय का यह परिवर्तन मैंने जल्दी-जल्दी ही किया है—उदाहरण के लिये पृष्ठ ७९-८० पर संजय के समस्त सम्वाद एक विशिष्ट लय में है, पृष्ठ ८१ पर संजय के संवाद की यह लय अकस्मात बदल जाती है।

जब 'अन्धायुग' प्रस्तुत किया गया तो अभिनेताओं के साथ एक कठिनाई दीख पड़ी। वे सम्वादों को या तो बिलकुल कविता की तरह लय के आघात दे देकर पढ़ते थे, या बिल्कुल गद्य की तरह। स्थिति इन दोनों के बीच की होनी चाहिये। लय की अपेक्षा अर्थ पर बल प्रमुख होना चाहिये, किन्तु छन्द की लय भी ध्वनित होती रहनी चाहिये। अभी इस प्रकार के नाटकों की परम्परा का हिन्दी में सूत्रपात ही हो रहा है, किन्तु छन्दात्मक लय, नाटकीय कथन और अर्थ पर आग्रह का जितना सफल समन्वय अश्वत्थामा की भूमिका में श्री गोपालदास ने 'अन्धा युग' के रेडियो रूपान्तर में प्रस्तुत किया है और उसमें वाल्यूम, अडर-टोन, ओवर-टोन, ओवरलैपिंग टोन्स, स्वरों के कम्पन आदि का जैसा उपयोग किया है, वह न केवल इन गीति-नाट्यों वरन समस्त नई कविता के प्रभावोत्पादक पाठ की अमित सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है।

मूलतः यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखा गया था। यहाँ यह उसी मूल रूप में छापा जा रहा है। लिखे जाने के बाद इसका रेडियो रूपान्तर भी प्रस्तुत हुआ जिसके कारण इसके सम्वादों की लय और भाषा को माँजने में काफी सहायता मिली। मैंने इस बात को भी ध्यान में रक्खा है कि मंच-विधान को थोड़ा बदल कर यह खुले मंच वाले लोक-नाट्य में भी परिवर्तित किया जा सकता है। अधिक कल्पनाशील निर्देशक इसके रंगमंच को प्रतीकात्मक भी बना सकते हैं।

●

पात्र

अश्वत्थामा

गांधारी	विदुर
धृतराष्ट्र	युधिष्ठिर
कृतवर्मा	कृपाचार्य
संजय	युयुत्सु
वृद्धयाचक	गूँगा भिखारी
प्रहरी १.	प्रहरी २.
व्यास	बलराम

कृष्ण

●

घटना-काल

महाभारत के अठ्ठारहवें दिन की संध्या से
लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण
की मृत्यु के क्षण तक

●

स्थापना

अन्धा युग

[नेपथ्य से उद्‌घोषणा तथा मंच पर नर्तक के द्वारा उपयुक्त भावनाट्य का प्रदर्शन। शंखध्वनि के साथ पर्दा खुलता है तथा मंगलाचरण के साथ-साथ नर्तक नमस्कार-मुद्रा प्रदर्शित करता है। उद्‌घोषणा के साथ-साथ उसकी मुद्राएँ बदलती जाती हैं।]

मंगलाचरण

नारायणम् नमस्कृत्य नरम् चैव नरोत्तमम्
देवीम् सरस्वतीम् व्यासम् ततो जयमुदीयरेत्

उद्‌घोषणा

जिस युग का वर्णन इस कृति में है
उसके विषय में विष्णु-पुराण में कहा है:

'ततश्चानुदिनमल्पाल्प ह्रास
व्यवच्छेदाद्धर्मार्थयोर्जगतस्संक्षयो भविष्यति।'
उस भविष्य में
धर्म अर्थ ह्रासोन्मुख होंगे
क्षय होगा धीरे-धीरे सारी धरती का।

'ततश्चार्थ एवाभिजन हेतु।'
सत्ता होगी उनकी
जिनकी पूँजी होगी।

'कपटवेष धारणमेव महत्व हेतु।'
जिनके नक़ली चेहरे होंगे
केवल उन्हें महत्व मिलेगा।

'एवम् चाति लुब्धक राजा
सहाश्शैलानामन्तरद्रोणीः प्रजा सश्रियष्यन्ति।'
राजशक्तियाँ लोलुप होंगी,
जनता उनसे पीड़ित होकर
गहन गुफ़ाओं में छिप-छिप कर दिन काटेगी।
(गहन गुफ़ाएँ वे सचमुच की या अपने कुण्ठित अंतर की)

[गुफ़ाओं में छिपने की मुद्रा का प्रदर्शन करते-करते नर्तक नेपथ्य में चला जाता है।]

युद्धोपरान्त,
यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अन्तर की अन्ध-गुफ़ाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की है,
या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से

[पटाक्षेप]

पहला अंक

कौरव नगरी

तीन बार तूर्यनाद के उपरान्त

कथा-गायन

टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
पाण्डव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा

यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है
क्या अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है

अन्धों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन

भय का अन्धापन, ममता का अन्धापन
अधिकारों का अन्धापन जीत गया
जो कुछ सुन्दर था, शुभ था, कोमलतम था
वह हार गया......द्वापर युग बीत गया

[पर्दा उठने लगता है]

यह महायुद्ध के अंतिम दिन की संध्या
है छाई चारो ओर उदासी गहरी
कौरव के महलों का सूना गलियारा
हैं घूम रहे केवल दो बूढ़े प्रहरी

[पर्दा उठने पर स्टेज खाली है। दाईं ओर और बाईं ओर बरछे और ढाल लिये दो प्रहरी हैं जो वार्तालाप करते हुए यन्त्र-परिचालित से स्टेज के आर-पार चलते हैं।]

प्रहरी १. थके हुए हैं हम,
पर घूम-घूम पहरा देते हैं
इस सूने गलियारे में

प्रहरी २. सूने गलियारे मे

जिसके इन रत्नजटित फर्शों पर
कौरव-वधुएँ
मन्थर मन्थर गति से
सुरभित पवन तरंगों सी चलती थीं

आज वे विधवा हैं!

प्रहरी १. थके हुए हैं हम,

इसलिए नही कि
कही युद्धों में हमने भी
बाहुबल दिखाया है

प्रहरी थे हम केवल

सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में
भाले हमारे ये,
ढालें हमारी ये
निरर्थक पड़ी रहीं
अंगों पर बोझ बनी

रक्षक थे हम केवल
लेकिन रक्षणीय कुछ भी नहीं था यहाँ

प्रहरी २. (रक्षणीय कुछ भी नहीं था यहाँ...

संस्कृति थी यह एक बूढ़े और अंधे की
जिसकी सन्तानों ने
महायुद्ध घोषित किए,
जिसके अन्धेपन में मर्यादा
गलित अंग वेश्या सी
प्रजाजनों को भी रोगी बनाती फिरी
उस अन्धी संस्कृति,
उस रोगी मर्यादा की
रक्षा हम करते रहे
सत्रह दिन।)

प्रहरी १. जिसने अब हमको थका डाला है

मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का,
साहस का,
श्रम का,
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था

प्रहरी २. अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में
पहरा दे देकर
अब थके हुए हैं हम
अब चुके हुए हैं हम

[चुप होकर वे आरपार घूमते हैं। सहसा स्टेज पर प्रकाश धीमा हो जाता है। नेपथ्य से आँधी की सी ध्वनि आती है। एक प्रहरी कान लगा कर सुनता है, दूसरा भौंहों पर हाथ रख कर आकाश की ओर देखता है।]

प्रहरी १. सुनते हो
कैसी है ध्वनि यह
भयावह ?

प्रहरी २. सहसा अँधियारा क्यों होने लगा
देखो तो
दीख रहा है कुछ

प्रहरी १. अंधे राजा की प्रजा कहाँ तक देखे ?
दीख नहीं पड़ता कुछ
हाँ, शायद बादल है

[दूसरा प्रहरी भी बगल में आकर देखता है और भयभीत हो उठता है।]

प्रहरी २. बादल नहीं है
ये गिद्ध हैं
लाखों करोड़ों
पाँखें खोले

[पंखों की ध्वनि के साथ स्टेज पर और भी अन्धेरा]

प्रहरी १. लो,
सारी कौरव नगरी
का आसमान
गिद्धों ने घेर लिया

प्रहरी २. झुक जाओ
झुक जाओ
ढालों के नीचे
छिप जाओ
नरभक्षी हैं
ये गिद्ध भूखे हैं।

[प्रकाश तेज होने लगता है।]

प्रहरी १. लो ये मुड़ गए
कुरुक्षेत्र की दिशा में

[आँधी की ध्वनि कम होने लगती है।]

प्रहरी २. मौत जैसे
ऊपर से निकल गई

प्रहरी १. अशकुन है
भयानक यह ।
पता नहीं क्या होगा
कल तक
इस नगरी में ।

[विदुर का प्रवेश, बाईं ओर से]

प्रहरी १. कौन है ?

विदुर. मैं हूं
विदुर
देखा धृतराष्ट्र ने ?
देखा यह भयानक दृश्य ?

प्रहरी १. देखेंगे कैसे वे ?
अन्धे हैं ।
कुछ भी क्या देख सके
अब तक
वे ?

विदुर. मिलूंगा उनसे मैं
अशकुन भयानक है ।
पता नहीं संजय
क्या समाचार लायें आज ?

[प्रहरी जाते हैं, विदुर अपने स्थान पर चिन्तातुर खड़े रहते हैं । पीछे का पर्दा उठने लगता है ।]

कथा-गायन

है कुरुक्षेत्र से कुछ भी खबर न आई
जीता या हारा बचा खुचा कौरव दल

जाने किसकी लोथों पर जा उतरेगा
यह नरभक्षी गिद्धों का भूखा बादल

अन्तःपुर में मरघट की सी खामोशी
कृश गान्धारी बैठी हैं शीश झुकाए
सिंहासन पर धृतराष्ट्र मौन बैठे हैं
संजय अब तक कुछ भी सम्वाद न लाए

[पर्दा उठने पर अन्तःपुर। कुशासन बिछाए सादी चौकी पर गान्धारी। एक छोटे सिंहासन पर चिन्तातुर धृतराष्ट्र। विदुर उनकी ओर बढ़ते हैं]

धृतराष्ट्र. कौन संजय ?

विदुर. नहीं !
विदुर हूँ
महाराज।

विह्वल है सारा नगर आज
बचे खुचे जो भी दस-बीस लोग
कौरव नगरी में हैं
अपलक नेत्रों से
कर रहे प्रतीक्षा हैं
संजय की

[कुछ क्षण महाराज के उत्तर की प्रतीक्षा कर]

महाराज
चुप क्यों हैं इतने
आप ?
माता गान्धारी भी मौन हैं !

धृतराष्ट्र. विदुर !
जीवन में प्रथम बार
आज मुझे आशंका व्यापी है।

विदुर. आशंका ?
आपको जो व्यापी है आज
वह वर्षों पहले हिला गई थी सब को

धृतराष्ट्र. पहले पर कभी भी तुमने यह नहीं कहा...

विदुर. भीष्म ने कहा था,
गुरु द्रोण ने कहा था,
इसी अन्तःपुर में
आकर कृष्ण ने कहा था—
'मर्यादा मत तोड़ो
तोड़ी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर सी
गुंजलिका में कौरव वंश को लपेट कर
सूखी लकड़ी सा तोड़ डालेगी।'

धृतराष्ट्र. समझ नहीं सकते हो
विदुर तुम।

मैं था जन्मान्ध।
कैसे कर सकता था
ग्रहण मैं
बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को ?

विदुर. जैसे संसार को किया था ग्रहण
अपने
अन्धेपन
के बावजूद

धृतराष्ट्र. पर वह संसार
स्वतः मेरे अन्धेपन से उपजा था।

मैंने अपने ही वैयक्तिक सम्वेदन से जो जाना था
केवल उतना ही था मेरे लिए वस्तु-जगत

इन्द्रजाल की माया सृष्टि के समान
घने गहरे अँधियारे में
एक काले विन्दु से
मेरे मन ने सारे भाव किये थे विकसित
मेरी सब वृत्तियाँ उसी से परिचालित थीं !

मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिल्कुल मेरा ही वैयक्तिक था ।

उसमें नैतिकता का कोई वाह्य मापदंड था ही नहीं ।

कौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे
वे ही थे अन्तिम सत्य
मेरी ममता ही वहाँ नीति थी
मर्यादा थी ।

विदुर. पहले ही दिन से किन्तु
आपका वह अन्तिम सत्य
—कौरवों का सैनिक बल—
होने लगा था सिद्ध झूठा और शक्तिहीन

पिछले सत्रह दिन से
एक एक कर
पूरे वंश के विनाश का
सम्वाद आप सुनते रहे ।

धृतराष्ट्र. मेरे लिए वे सम्वाद सब निरर्थक थे ।

मैं हूँ जन्मान्ध
केवल सुन ही तो सकता हूँ
संजय मुझे देते हैं केवल शब्द
उन शब्दों से जो आकार-चित्र बनते हैं
उनसे मैं अब तक अपरिचित हूँ

कल्पित कर सकता नही
कैसे दुःशासन की आहत छाती से

रक्त उबल रहा होगा,
कैसे क्रूर भीम ने अँजुली में
धार उसे
ओठ तर किये होंगे।

गान्धारी. [कानों पर हाथ रखकर]

महाराज।
मत दोहरायें वह
सह नही पाऊँगी।

[सब क्षण भर चुप]

धृतराष्ट्र. आज मुझे भान हुआ।

मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है
आज मुझे भान हुआ।

सहसा यह लगा कोई बाँध टूट गया है
कोटि-कोटि योजन तक दहाड़ता हुआ समुद्र
मेरे वैयक्तिक अनुमानित सीमित जग को
लहरों की विषमय जिह्वाओं से निगलता हुआ
मेरे अन्तर्मन में पैठ गया

सब कुछ बह गया
मेरे अपने वैयक्तिक मूल्य
मेरी निश्चिन्त किन्तु ज्ञानहीन आस्थाएँ।

विदुर. यह जो पीड़ा ने
पराजय ने
दिया है ज्ञान,
दृढ़ता ही देगा वह।

धृतराष्ट्र. किन्तु इस ज्ञान ने
भय ही दिया है विदुर।

जीवन में प्रथम बार
आज मुझे आशंका व्यापी है।

विदुर. भय है तो
ज्ञान है अधूरा अभी।

प्रभु ने कहा था यह...
'ज्ञान जो समर्पित नहीं है

अधूरा है
मनोबुद्धि तुम अर्पित कर दो
मुझे।
भय से मुक्त होकर
तुम प्राप्त मुझे ही होगे
इसमें सन्देह नहीं।'

गान्धारी. [आवेश से]
इसमें संदेह है
और किसी को मत हो
मुझको है।

'अर्पित कर दो मुझको मनोबुद्धि'
उसने कहा है यह
जिसने पितामह के बाणों से
आहत हो
अपनी सारी ही
मनोबुद्धि खो दी थी ?

उसने कहा है यह,
जिसने मर्यादा को तोड़ा है बार बार ?

धृतराष्ट्र. शान्त रहो,
शान्त रहो,
गान्धारी शान्त रहो।

दषो किसी को मत दो
अन्धा था मैं......

गान्धारी. लेकिन अन्धी नहीं थी मैं ।

मैंने यह बाहर का वस्तुजगत अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब है केवल आडम्बर मात्र
मैंने यह बार बार देखा था

निर्णय के क्षण में विवेक और मर्यादा
व्यर्थ सिद्ध होते आये हैं सदा
हम सब के मन में कहीं एक अन्ध गह्वर है
बर्बर पशु, अन्धा पशु वास वहीं करता है,
स्वामी जो हमारे विवेक का,

नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण
यह सब हैं अन्धी प्रवृत्तियों की पोशाकें
जिनमें कटे कपड़ों की आँखें सिली रहती हैं

मुझको इस झूठे आडम्बर से नफरत थी
इसलिए स्वेच्छा से मैंने इन आँखों पर पट्टी चढ़ा रक्खी थी

विदुर. कटु हो गयी हो तुम
गान्धारी !
पुत्रशोक ने तुमको अन्दर से
जर्जर कर डाला है !

तुम्हीं ने कहा था
दुर्योधन से...

गान्धारी. मैंने कहा था दुर्योधन से
धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख !
उधर जय होगी !

धर्म किसी ओर नहीं था लेकिन !

सब ही थे अन्धी प्रवृत्तियों से परिचालित,

जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया।
वंचक है।

धृतराष्ट्र. शान्त रहो गान्धारी।

विदुर. यह कटु निराशा की
उद्धत अनास्था है।

क्षमा करो प्रभु!
यह कटु अनास्था भी अपने
चरणों में स्वीकार करो!

आस्था तुम लेते हो
लेगा अनास्था कौन?

क्षमा करो प्रभु
पुत्रशोक से जर्जर माता है गान्धारी।

गान्धारी. माता मत कहो मुझे
तुम जिसको कहते हो प्रभु
वह भी मुझे माता ही कहता है।

शब्द यह जलते हुए लोहे की सलाखों सा
मेरी पसलियों में धँसता है।

सत्रह दिन के अन्दर
मेरे सब पुत्र एक एक कर मारे गए
अपने इन हाथों से
मैंने उन फूलों सी वधुओं की कलाई से
चूड़ियाँ उतारी हैं
अपने इस आँचल से
सेंदुर की रेखाएँ पोंछीं हैं।

[नेपथ्य से] जय हो
दुर्योधन की जय हो।

गान्धारी की जय हो।
मंगल हो.
नरपति धृतराष्ट्र का मंगल हो।

धृतराष्ट्र. देखो।
विदुर देखो ! संजय आये।

गान्धारी. जीत गया
मेरा पुत्र दुर्योधन
मैंने कहा था
वह जीतेगा निश्चय आज

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी. याचक है महराज।
एक वृद्ध याचक है।

[याचक का प्रवेश]

विदुर. याचक है ?
उन्नत ललाट
श्वेतकेशी
आजानुबाहु ?

याचक. मैं वह भविष्य हूँ
जो झूठा सिद्ध हुआ आज
कौरव की नगरी में
मैंने मापा था, नक्षत्रों की गति को
उतारा था अंकों में।
मानव नियति के
अलिखित अक्षर जाँचे थे !
मैं था ज्योतिषी दूर देश का।

धृतराष्ट्र. याद मुझे आता है
तुमने कहा था कि द्वन्द्व अनिवार्य है
क्योंकि उससे ही जय होगी कौरव-दल की

याचक. मैं हूँ वही
आज मेरा विज्ञान सब मिथ्या ही सिद्ध हुआ ।

सहसा एक व्यक्ति
ऐसा आया जो सारे
नक्षत्रों की गति से भी ज्यादा शक्तिशाली था ।

उसने रणभूमि में
विषादग्रस्त अर्जुन से कहा
'मैं हूँ परात्पर ।
जो कहता हूँ करो
सत्य जीतेगा
मुझसे लो सत्य मत डरो ।'

विदुर. प्रभु थे वे !

गान्धारी. कभी नही !

विदुर. उनकी गति में ही
समाहित है सारे इतिहासों की,
सारे नक्षत्रों की दैवी गति ।

याचक. पता नही
प्रभु हैं या नही

किन्तु उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर, चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है ।

नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता मिटाता है ।

गान्धारी. प्रहरी, इसको एक अंजुल मुद्राएँ दो ।
तुमने कहा है
'जय होगी दुर्योधन की ।'

याचक. मैं तो हूँ झूठा भविष्य मात्र
मेरे शब्दों का इस वर्तमान में
कोई मूल्य नही

मेरे जैसे
जाने कितने
झूठे भविष्य
ध्वस्त स्वप्न
गलित तत्व
बिखरे हैं कौरव की नगरी में
गली-गली।

माता हैं गान्धारी
ममता में पाल रही हैं सब को।

[प्रहरी मुद्राएँ लाकर देता है]

जय हो दुर्योधन की
जय हो गान्धारी की

[जाता है]

गान्धारी. होगी,
अवश्य होगी जय।
मेरी यह आशा
यदि अन्धी है तो हो
पर जीतेगा, दुर्योधन जीतेगा।

[दूसरा प्रहरी आकर दीप जलाता है]

विदुर. डूब गया दिन......

धृतराष्ट्र. पर
संजय नही आये
लौट गए होंगे

सब योद्धा अब शिविरों में
जीता कौन ?
हारा कौन ?

विदुर. महाराज।
संशय मत करें।

संजय जो समाचार लायेंगे शुभ होगा
माता अब आकर विश्राम करें !
नगर द्वार अपलक खुले ही हैं
संजय के रथ की प्रतीक्षा में

[एक ओर विदुर और दूसरी ओर धृतराष्ट्र तथा गान्धारी जाते हैं; प्रहरी पुनः स्टेज के आरपार घूमने लगते हैं]

प्रहरी १. मर्यादा !

प्रहरी २. अनास्था !

प्रहरी १. पुत्रशोक !

प्रहरी २. भविष्यत् !

प्रहरी १. ये सब
राजाओं के जीवन की शोभा हैं

प्रहरी २. वे जिनको ये सब प्रभु कहते हैं
इस सब को अपने ही ज़िम्मे ले लेते हैं।

प्रहरी १. पर यह जो हम दोनों का जीवन
सूने गलियारे में बीत गया

प्रहरी २. कौन इसे
अपने ज़िम्मे लेगा ?

प्रहरी १. हमने मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया,
क्योंकि नहीं थी अपनी कोई भी मर्यादा।

प्रहरी २. हमको अनास्था ने कभी नहीं झकझोरा
क्योंकि नहीं थी अपनी कोई भी गहन आस्था।

प्रहरी १. हमने नहीं झेला शोक

[प्रहरी २. जाना नहीं कोई दर्द

प्रहरी १. सूने गलियारे सा सूना यह जीवन भी बीत गया।

प्रहरी २. क्योंकि हम दास थे

प्रहरी १. केवल वहन करते थे आज्ञाएँ हम अन्धे राजा की

प्रहरी २. नही था हमारा कोई अपना खुद का मत, कोई अपना निर्णय

प्रहरी १. इसीलिये सूने गलियारे में
निरुद्देश्य,
निरुद्देश्य,
चलते हम रहे सदा
दाएँ से बाएँ,
और बाएं से दाएँ

प्रहरी २. मरने से बाद भी
यम के गलियारे में
चलते रहेंगे सदा
दाएँ से बाएँ
और बाएं से दाएँ

[चलते चलते विंग में चले जाते हैं। स्टेज पर अन्धेरा]

धीरे-धीरे पटाक्षेप के साथ

कथा गायन

आसन्न पराजय वाली इस नगरी में
सब नष्ट हुई पद्धतियाँ धीमे-धीमे

यह शाम पराजय की, भय की, संशय की
भर गए तिमिर से ये सूने गलियारे
जिनमें बूढ़ा झूठा भविष्य याचक सा
है भटक रहा टुकड़े को हाथ पसारे

अन्दर केवल दो बुझती लपटें बाक़ी
राजा के अन्धे दर्शन की बारीक़ी
या अन्धी आशा माता गान्धारी की

वह संजय जिसको यह वरदान मिला है
वह अमर रहेगा और तटस्थ रहेगा
जो दिव्य दृष्टि से सब देखे समझेगा
जो अन्धे राजा से सब सत्य कहेगा

जो मुक्त रहेगा ब्रह्मास्त्रों के भय से
जो मुक्त रहेगा उलझन से, संशय से

वह संजय भी
इस मोह निशा से घिर कर
है भटक रहा
जाने किस कंटक पथ पर।

दूसरा अंक

पशु का उदय

कथा-गायन

संजय तटस्थंद्रष्टा शब्दों का शिल्पी है
पर वह भी भटक गया असमंजस के वन में
दायित्व गहन, भाषा अपूर्ण, श्रोता अन्धे
पर सत्य वही देगा उनको संकट क्षण में

वह संजय भी
इस मोहनिशा से घिर कर
है भटक रहा
जाने किस कंटक पथ पर

[पर्दा उठने पर वनपथ का दृश्य। कोई योद्धा बगल में अस्त्र रख कर वस्त्र से मुख ढाँप सोया है। संजय का प्रवेश]

संजय. भटक गया हूँ
मैं जाने किस कंटक वन में

पता नहीं कितनी दूर और हस्तिनापुर है
कैसे पहुँचूँगा मैं ?
जाकर कहूँगा क्या
इस लज्जाजनक पराजय के बाद भी
क्यों जीवित बचा हूँ मैं ?
कैसे कहूँगा मैं
कमी नही शब्दों की आज भी
मैने ही उनको बताया है
युद्ध में घटा जो जो
लेकिन आज अन्तिम पराजय के अनुभव ने
जैसे प्रकृति ही बदल दी है सत्य की
आज कैसे वही शब्द
वाहक बनेंगे इस नूतन अनुभूति के ?

[सहसा जाग कर वह योद्धा पुकारता है :—'संजय']

किसने पुकारा मुझे ?
प्रेतो की ध्वनि है यह
या मेरा भ्रम ही है ?

कृतवर्मा. डरो मत
मैं हूँ कृतवर्मा !
जीवित हो संजय तुम ?
पांडव योद्धाओं ने छोड़ दिया
जीवित तुम्हें ?

संजय. जीवित हूँ !

आज जब कोसों तक फैली हुई धरती को
पाट दिया अर्जुन ने
भूलुंठित कौरव कबन्धों से,
शेष नही रहा एक भी
जीवित कौरव वीर
सात्यकि ने मेरे भी वध को उठाया अस्त्र;

अच्छा था
मैं भी
यदि आज नहीं बचता शेष,
किन्तु कहा व्यास ने 'मरेगा नहीं
संजय अवध्य है'

कैसा यह शाप मुझे व्यास ने दिया है
अनजाने में
हर संकट, युद्ध, महानाश, प्रलय, विप्लव के बावजूद
शेष बचोगे तुम संजय
सत्य कहने को

अन्धों से

किन्तु कैसे कहूँगा हाय

सात्यकि के उठे हुए शस्त्र के
चमकदार ठंढे लोहे के स्पर्श मे
मृत्यु को इतने निकट पाना
मेरे लिये यह
बिल्कुल ही नया अनुभव था !
जैसे तेज़ वाण किसी
कोमल मृणाल को
ऊपर से नीचे तक चीर जाय]
चरम त्रास के उस बेहद गहरे क्षण मे
कोई मेरी सारी अनुभूतियों को चीर गया
कैसे दे पाऊँगा मैं सम्पूर्ण सत्य
उन्हें विकृत अनुभूति से ?

कृतवर्मा. धैर्य धरो संजय !
क्योंकि तुमको ही जाकर बतानी है
दोनों को पराजय दुर्योधन की !

संजय. कैसे बताऊँगा ?

वह जो सम्राटों का अधिपति था

खाली हाथ
नंगे पाव
रक्त सने
फटे हुए वस्त्रों में
टूटे रथ के समीप
खड़ा था निहत्था ही;

अश्रु भरे नेत्रों से
उसने मुझे देखा
और माथा झुका लिया

कैसे कहूँगा
मैं जाकर उन दोनों से
कैसे कहूँगा ?

[जाता है]

कृतवर्मा. चला गया संजय भी

बहुत दिनों पहले
विदुर ने कहा था
यह होकर रहेगा
वह होकर रहा आज

[नेपथ्य में कोई पुकारता है, "अश्वत्थाऽऽमाऽऽ !" कृतवर्मा ध्यान से सुनता है]

यह तो आवाज है
बूढ़े कृपाचार्य की।

[नेपथ्य में पुनः पुकार 'अश्वत्थाऽऽमाऽऽ।' कृतवर्मा पुकारता है—'कृपाऽऽ-चार्य।' कृपाचार्य, कृपाचार्य का प्रवेश]

यह तो कृतवर्मा है।
तुम भी जीवित हो कृतवर्मा ?

कृतवर्मा. जीवित हूँ
क्या अश्वत्थामा भी जीवित है ?

कृपाचार्य. जीवित हैं
केवल हम तीन
आज !

रथ से उतर कर
जब राजा दुर्योधन ने
नतमस्तक होकर
पराजय स्वीकार की
अश्वत्थामा ने
यह देखा
और उसी समय
उसने मरोड़ दिया
अपना धनुष

आर्तनाद करता हुआ
वन की ओर चला गया।

अश्वत्थाऽऽमाऽऽ.........

[पुकारते हुए जाते हैं, दूर से उनकी पुकार सुन पड़ती है। पीछे का पर्दा खुल कर अन्दर का दृश्य। अन्धेरा। केवल एक प्रकाशवृत्त अश्वत्थामा पर, जो टूटा धनुष हाथ में लिये बैठा है]

अश्वत्थामा. यह मेरा धनुष है
धनुष अश्वत्थामा का
जिसकी प्रत्यचा खुद द्रोण ने चढ़ाई थी

आज जब मैंने
दुर्योधन को देखा
निःशस्त्र, दीन
आँखों में आँसू भरे
मैंने मरोड़ दिया
अपने इस धनुष को।

कुचले हुए सांप सा
भयावह किन्तु

शक्तिहीन मेरा धनुष है यह
जैसा है मेरा मन
किसके बल पर लूँगा
मैं अब
प्रतिशोध
पिता की निर्मम हत्या का ।

वन में
भयानक इस वन में भी
भूल नही पाता हूँ मैं
कैसे सुनकर
युधिष्ठिर की घोषणा
कि 'अश्वत्थामा मारा गया'
शस्त्र रख दिये थे
गुरु द्रोण ने रणभूमि में ।

उनको थी अटल आस्था
युधिष्ठिर की वाणी में

पाकर निहत्था उन्हें
पापी धृष्टद्युम्न ने
अस्त्रों से खंड-खंड कर डाला

भूल नही पाता हूँ
मेरे पिता थे अपराजेय

अर्द्धसत्य से ही
युधिष्ठिर ने उनका
वध कर डाला ।

उस दिन से
मेरे अन्दर भी
जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण हत्या

युधिष्ठिर के
अर्द्धसत्य ने कर दी

धर्मराज होकर वे बोले
'नर या कुंजर'
मानव को पशु से
उन्होंने पृथक नही किया

उस दिन से मैं हूँ
पशुमात्र, अन्ध बर्बर पशु
किन्तु आज मैं भी एक अन्धी गुफा में हूँ भटक गया
गुफ़ा यह पराजय की

दुर्योधन सुनो !
सुनो, द्रोण सुनो !
मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा
कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक
जैसे रोगी मुर्दे के
मुख मे शेष रहता है
गन्दा कफ़
बासी थूक
शेष हूँ अभी तक मैं

[वक्ष पीटता है]

आत्मघात कर लूँ ?
इस नपुंसक अस्तित्व से
छुटकारा पाकर
यदि मुझे
पिघली नरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद
इतनी यातना नही होगी !

[नेपथ्य में पुकार अश्वत्थाऽऽमाऽऽ]

किन्तु नहीं !
जीवित रहूँगा मैं
अन्धे बर्बर पशु सा

वाणी हो सत्य धर्मराज की ।

मेरी इस पसली के नीचे
दो पंजे उग आयें
मेरी ये पुतलियाँ
बिन दाँतों के चीथ खायें
पायें जिसे !

वध, केवल वध, केवल वध
अन्तिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का ।

[किसी के आने की आहट]

आता है कोई
शायद पांडव योद्धा है
आहा ।
अकेला, निहत्था है ।
पीछे से छिपकर
इस पर करूँगा वार
इन भूखे हाथों से
धनुष मरोड़ा है
गर्दन मरोड़ूँगा
छिप जाऊँ, इस झाड़ी के पीछे

[छिपता है । संजय का प्रवेश]

संजय. फिर भी रहूँगा शेष
फिर भी रहूँगा शेष
फिर भी रहूँगा शेष

सत्य कितना कटु हो
कटु से यदि कटुतर हो
कटुतर से कटुतम हो
फिर भी कहूँगा मैं

केवल सत्य, केवल सत्य, केवल सत्य
है अन्तिम अर्थ
मेरे.........आह !

अश्वत्थामा आक्रमण करता है। गला दबोच लेता है]

अश्वत्थामा. इसी तरह
इसी तरह
मेरे भूखे पंजे जाकर दबोचेंगे
वह गला युधिष्ठिर का
जिससे निकला था
'अश्वत्थामा हतो हतः'

[कृतवर्मा और कृपाचार्य प्रवेश करते हैं]

कृतवर्मा. [चीख़कर]
छोड़ो अश्वत्थामा !
संजय है वह
कोई पांडव नही है।

अश्वत्थामा. केवल, केवल वध, केवल... ...

कृपाचार्य. कृतवर्मा, पीछे से पकड़ो
कस लो अश्वत्थामा को।
वध—लेकिन शत्रु का
कैसे योद्धा हो अश्वत्थामा ?
संजय अवध्य है
तटस्थ है।

अश्वत्थामा. [कृतवर्मा के बन्धन में छटपटाता हुआ]
तटस्थ ?

मातुल मैं योद्धा नही हूँ
बर्बर पशु हूँ
यह तटस्थ शब्द
है मेरे लिये अर्थहीन।

सुन लो यह घोषणा
इस अन्धे बर्बर पशु की
पक्ष में नही है जो मेरे
वह शत्रु है।

कृतवर्मा. पागल हो तुम।
संजय, जाओ अपने पथ पर।

संजय. मत छोड़ो
विनती करता हूँ
मत छोड़ो मुझे
कर दो वध

जाकर अन्धों से
सत्य कहने की
मर्मान्तक पीड़ा है जो
उससे तो वध ज्यादा सुखमय है

वध करके
मुक्त मुझे कर दो।
अश्वत्थामा।

[अश्वत्थामा विवश दृष्टि से कृपाचार्य की ओर देखता है, उनके कन्धों से शीश टिका देता है]

अश्वत्थामा. मैं क्या करूँ ?
मातुल !
मैं क्या करूँ ?
वध मेरे लिये नहीं रही नीति
वह है अब मेरे लिये मनोग्रन्थि

किसको पा जाऊँ
मरोड़ूँ मैं !

मैं क्या करूँ,
मातुल, मैं क्या करूँ ?

कृपाचार्य. मत हो निराश
अभी......

कृतवर्मा. करना बहुत कुछ है
जीवित अभी भी है दुर्योधन
चल कर सब खोजें उन्हें ।

कृपाचार्य. संजय
तुम्हें ज्ञात है
कहाँ हैं वे ?

संजय. [धीमे मे]
वे हैं सरोवर में

माया से बाँध कर
सरोवर का जल
वे निश्चल
अन्दर बैठे हैं

ज्ञात नही है
यह पाँडव दल को ।

कृपाचार्य. स्वस्थ हो अश्वत्थामा
चल कर आदेश लो दुर्योधन से
संजय चलो
तुम सरोवर तक पहुँचा दो

कृतवर्मा. कौन आ रहा है वह
वृद्ध व्यक्ति ?

कृपाचार्य. निकल चलो
इसके पहले हमको
कोई भी देख पाय

अश्वत्थामा. [जाते-जाते] मैं क्या करूँ मातुल
मैंने तो अपना धनुष भी मरोड़ दिया

[वे जाते हैं। कुछ क्षण स्टेज खाली रहता है। फिर धीरे-धीरे वृद्ध याचक प्रवेश करता है]

वृद्ध याचक. दूर चला आया हूँ
काफी,
हस्तिनापुर से,

वृद्ध हूँ दीख नही पड़ता है
निश्चय ही अभी यहाँ देखा था मैंने कुछ लोगों को
देखूँ मुझको जो मुद्रायें दी
माता गान्धारी ने
वे तो सुरक्षित हैं।

मैंने यह कहा था
'यह है अनिवार्य
और वह है अनिवार्य
और यह तो स्वयम होगा
वह तो स्वयम होगा'

आज इस पराजय की वेला में
सिद्ध हुआ
झूठी थी सारी अनिवार्यता भविष्य की।
केवल कर्म सत्य है
मानव जो करता है इसी समय
उसी में निहित है भविष्य
युग युग तक का !

[हाँफता है]

इसीलिये उसने कहा
अर्जुन
उठाओ शस्त्र
विगतज्वर युद्ध करो
निष्क्रियता नहीं
आचरण में ही
मानव अस्तित्व की सार्थकता है ।

[नीचे झुक कर धनुष देखता है । उठाकर]

किसने यह छोड़ दिया धनुष यहाँ ?
क्या फिर किसी अर्जुन के
मन में विषाद हुआ ?

अश्वत्थामा. [प्रवेश करते हुये]
मेरा धनुष है
यह ।

वृद्ध याचक. कौन आ रहा है यह ?

जय अश्वत्थामा की !

अश्वत्थामा. जय मत कहो वृद्ध ।

जैसे तुम्हारी भविष्यत् विद्या
सारी व्यर्थ हुई
उसी तरह मेरा धनुष भी व्यर्थ सिद्ध हुआ ।

मैंने अभी देखा दुर्योधन को
जिसके मस्तक पर
मणिजटित राजछत्रों की छाया थी
आज उसी मस्तक पर
गँदले पानी की
एक चादर है ।

तुमने कहा था
जय होगी दुर्योधन की

वृद्ध याचक. जय हो दुर्योधन की
अब भी मैं कहता हूँ।

वृद्ध हूँ
थका हूँ
पर जाकर कहूँगा मैं
'नहीं है पराजय यह दुर्योधन
इसको तुम मानो नये सत्य की उदय-वेला।'

मैंने बतलाया था
उसको झूठा भविष्य
अब जाकर उसको बतलाऊँगा
'वर्तमान से स्वतन्त्र कोई भविष्य नहीं'
अब भी समय है दुर्योधन,
समय अब भी है!
हर क्षण इतिहास बदलने का क्षण होता है

[धीरे धीरे जाने लगता है।]

अश्वत्थामा. मैं क्या करूँगा
हाय मैं क्या करूँगा?
वर्तमान में जिसके
मैं हूँ और मेरी प्रतिहिंसा है!
एक अर्द्धसत्य ने युधिष्ठिर के
मेरे भविष्य की हत्या कर डाली है

किन्तु नही,
जीवित रहूँगा मैं
पहले ही मेरे पक्ष में
नहीं है निर्धारित भविष्य अगर
तो वह तटस्थ है!
शत्रु है अगर वह तटस्थ है!

[वृद्ध की ओर बढ़ने लगता है।]

आज नहीं बच पायेगा
वह इन भूखे पंजों से
ठहरो ! ठहरो !
ओ झूठे भविष्य
वंचक वृद्ध !

[दाँत पीसते हुए दौड़ता है। विंग के निकट वृद्ध को दबोच कर नेपथ्य में घसीट ले जाता है।]

वध, केवल वध, केवल वध
मेरा धर्म है।

[नेपथ्य में गला घोंटने की आवाज, अश्वत्थामा का अट्टहास। स्टेज पर केवल दो प्रकाशवृत्त नृत्य करते हैं। कृपाचार्य, कृतवर्मा हाँफते हुए अश्वत्थामा को पकड़ कर स्टेज पर लाते हैं।]

कृपाचार्य. यह क्या किया,
अश्वत्थामा।
यह क्या किया।

अश्वत्थामा. पता नही मैंने क्या किया,
मातुल मैंने क्या किया !
क्या मैंने कुछ किया ?

कृतवर्मा. कृपाचार्य
भय लगता है
मुझको
इस अश्वत्थामा से !

[कृपाचार्य अश्वत्थामा को बिठाकर, उसका कमरबन्द ढीला करते हैं। माथे का पसीना पोंछते हैं।]

कृपाचार्य. बैठो
विश्राम करो

तुमने कुछ नही किया
केवल भयानक स्वप्न देखा है !

अश्वत्थामा. मैं क्या करूँ
मातुल !
वध मेरे लिये नही नीति है
वह है अब मनोग्रन्थि !

इस वध के बाद
मांस-पेशियों का सब तनाव
जैसे खुल गया !

कहते क्या इसी को हैं
अनासक्ति ?

कृपाचार्य. [अश्वत्थामा को लिटा कर]
सो जाओ
तुम हो अस्वस्थ आज
सो जाओ !

कहा है दुर्योधन ने
जाकर विश्राम करो
कल देखेंगे हम
पांडवगण क्या करते हैं
करवट बदल कर
तुम सो जाओ

[कृतवर्मा से]
सो गया

कृतवर्मा. (व्यंग से)
सो गया।

इसीलिये शेष बचे हैं हम
इस युद्ध में

हम जो योद्धा थे
अब लुक छिप कर
बूढ़े निहत्थों का
करेंगे वध।

कृपाचार्य. शान्त रहो कृतवर्मा !

योद्धा नामधारियों में
किसने क्या नहीं
किया है
अब तक ?

द्रोण थे बूढ़े निहत्थे
पर
छोड़ दिया था क्या
उनको धृष्टद्युम्न ने ?
या हमने छोड़ा अभिमन्यु को
यद्यपि वह बिल्कुल निहत्था था
अकेला था

सात महारथियो ने......

अश्वत्थामा. मैंने नही मारा उसे......

मैं तो चाहता था वध करना भविष्य का
पता नही कैसे वह
बूढ़ा मरा पाया गया।

मैंने नही मारा उसे
मातुल विश्वास करो।

कृपाचार्य. सो जाओ
अश्वत्थामा सो जाओ !
सो जाओ कृतवर्मा !
पहरा मैं देता रहूँगा आज रात भर
[वे लौटते हैं। पर्दा गिरने लगता है।]

कथा-गायन

जिस तरह बाढ़ के बाद उतरती गंगा
तट पर तज जाती विकृत शव अधखाया
वैसे ही तट पर तज अश्वत्थामा को
इतिहासों ने खुद नया मोड़ अपनाया

यह छूटी हुई आत्माओं की रात
यह भटकी हुई आत्माओं की रात
यह टूटी हुई आत्माओं की रात

इस रात विजय में मदोन्मत्त पांडवगण
इस रात विवश छिपकर बैठा दुर्योधन

यह रात गर्व में
तने हुए माथों की
यह रात हाथ पर
धरे हुए हाथों की

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य

कथा-गायन

संजय का रथ जब नगर द्वार पहुँचा
तब रात ढल रही थी।
हारी कौरव सेना कब लौटेगी......
यह बात चल रही थी।

संजय से सुनते सुनते युद्ध-कथा
हो गई सुबह; पाकर यह गहन व्यथा
गान्धारी पत्थर थी; उस श्रीहत मुख पर
जीवित मानव सा कोई चिह्न न था।

दुपहर होते होते हिल उठा नगर
खंडित रथ टूटे छकड़ों पर लद कर
थे लौट रहे ब्राह्मण, स्त्रियाँ, चिकित्सक,
विधवाएँ, बौने, बूढ़े, घायल, जर्जर।

जो सेना रंगबिरंगी ध्वजा उड़ाते
रौंदते हुए धरती को, गगन कँपाते
थी गई युद्ध को अठ्ठारह दिन पहले
उसका यह रूप हो गया आते आते।

[पर्दा उठता है। प्रहरी खड़े हैं। विदुर का सहारा लेकर धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं।]

धृतराष्ट्र. देख नही सकता हूँ
पर मैंने छू छू कर
अंग-भंग सैनिकों को
देखने की कोशिश की

बाँह के पास से
हाथ जब कट जाता है
लगता है वैसा जैसे मेरे सिंहासन का
हत्था है

विदुर. महाराज
यह सब क्या सोच रहे हैं
आप ?

धृतराष्ट्र. कोई खास बात नही
सिर्फ मैं संजय के शब्दों से
सुनता आया था जिसे
आज उसी युद्ध को हाथों से छू-छू कर
अनुभव करने का अवसर पाया है।

[इसी बीच में एक पंगु गूँगा सैनिक घिसलता हुआ आता है। विदुर के पाँव पकड़ कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करता है। चिल्लू से संकेत कर पानी माँगता है।]

विदुर. [चौंककर]
क्या है ? ओह !
प्रहरी थोड़ा जल लाओ

धृतराष्ट्र. कौन है विदुर ?

विदुर. एक प्यासा सैनिक है महाराज।

[सैनिक गूँगी जिह्वा से जाने क्या क्या कहता है।]

धृतराष्ट्र. क्या कह रहा है यह ?

विदुर. कहता है 'जय हो धृतराष्ट्र की !'
जिह्वा कटी है महाराज !
गूँगा है !

धृतराष्ट्र. गूँगों के सिवा आज
और कौन बोलेगा मेरी जय।

[प्रहरी लाकर जल देता है। गूँगा हाँफने लगता है !]

प्रहरी १. [मस्तक छूकर]
ज्वर है इसे तो

धृतराष्ट्र. पिला दिया जल उसको !
कह दो विश्राम करे इधर कहीं

[गूँगा पीछे जाकर आँख मूँद कर पड़ रहता है।]

वस्त्र इसे दो लाकर
माता गान्धारी से

प्रहरी. माता गान्धारी आज दान-गृह में
हैं ही नहीं।

विदुर १. उनकी आँखों में
आँसू भी नहीं हैं
न शोक है
न क्रोध है

जड़वत् पत्थर सी वे बैठी है
सीढ़ी पर

[नेपथ्य में शोरगुल]

धृतराष्ट्र. प्रहरी जाकर देखो
कैसा है शोर यह

[प्रहरी जाता है ।]

विदुर. महाराज
आप जायँ
जाकर आश्वासन दें माता गान्धारी को

धृतराष्ट्र. जाता हूँ
संजय भी नही है वहाँ !
पता नही भीम और
दुर्योधन के अन्तिम द्वन्द्वयुद्ध का
वह क्या समाचार लाये आज ।

[शोर बढ़ता है ।]

विदुर. महाराज, आप जायँ ।

[धृतराष्ट्र दूसरे प्रहरी के साथ जाते हैं ।]

कैसा है शोर यह ?

[प्रहरी लौटता है ।]

प्रहरी. फैल गया है
पूरे नगर मे
अचानक
आतंक
त्रास ।

विदुर. क्यों ?

प्रहरी १. अपनी हारी घायल सेना
के साथ-साथ
कोई विपक्षी योद्धा भी
चला आया है
नगरी में

अस्त्रों से सज्जित है
दैत्याकार
योद्धा
वह ?
जनता कहती है वह नगरी को लूटेगा

[दूसरा प्रहरी लौट आता है ।]

विदुर. छिः,
यह सब मिथ्या है !

मैं खुद जाकर
उसको देखूँगा

रक्षा करो तुम
राजकक्ष की

[जाते हैं ।]

प्रहरी २. क्या तुमने
देखा था अपनी आँखों से
उस योद्धा को ?

प्रहरी १. मायावी है वह

रूप धारण करता है नित नये नये

बन्द कर दिया
जब रक्षकगण ने नगर द्वार,
धारण कर रूप
एक गृद्ध का

बन्द नगर-द्वारों के
ऊपर से
उड़ कर चला आया,
और लगा खाने
छत पर सोये बच्चों को

प्रहरी २. बन्द करो
जल्दी से द्वार उधर पश्चिम के ।

प्रहरी १. [भय से] वह देखो ।

प्रहरी २. [भय से] क्या है ?

प्रहरी १. वह आया ।

प्रहरी २. छिपो, इधर
छिपो

[दोनों पीछे छिपते हैं । एक साधारण योद्धा का प्रवेश]

युयुत्सु. डरने में
उतनी यातना नहीं है
जितनी वह होने में जिससे
सबके सब केवल भय खाते हों ।

वैसा ही मैं हूँ आज

ये हैं महल
मेरे पिता, मेरी माता के

लेकिन कौन जाने
यहाँ स्वागत हो
मेरा
एक जहर बुझे भाले से

प्रहरी १. ये तो युयुत्सु हैं
पुत्र धृतराष्ट्र के,

युद्ध में लड़े जो
युधिष्ठिर के पक्ष में।

युयुत्सु. मेरा अपराध सिर्फ इतना है।
सत्य पर रहा मैं दृढ़

द्रोण भीष्म
सबके सब महारथी
नही जा सके
दुर्योधन के विरुद्ध
फिर भी मैंने कहा
पक्ष में असत्य का नही लूँगा

मैं भी हूँ कौरव
पर सत्य बड़ा है कौरव वंश से।

प्रहरी २. निश्चय युयुत्सु हैं!
लगता है लौटे हैं
घायल सेना के साथ!

युयुत्सु. मैं भी
सह लेता यदि
सब उच्छृङ्खलता दुर्योधन की
आज मुझे इतनी घृणा तो
न मिलती
अपने ही परिवार में

माता खड़ी होती
बाँह फैलाये
चाहे पराजित ही मेरा माथा होता।

विदुर. [आते हैं।]
ढूँढ़ रहा हूँ
कब से तुमको युयुत्सु

वत्स !
अच्छा किया तुम जो वापस चले आये।

प्रहरी जाओ, जाकर
माता गान्धारी को सूचित करो
पुत्र शोक से पीड़ित माता
तुम्हें पाकर शायद
दुख भूल जाय।

युयुत्सु. पता नहीं
मेरा मुख भी देखेंगी
या नहीं

विदुर. ऐसा मत कहो।

कौरव पुत्रों की इस कलुषित कथा में
एक तुम हो केवल
जिसका माथा गर्वोन्नत है।

युयुत्सु. [कटुता से हँसकर]
इसीलिये देखकर मुझे आता
बन्द कर लिये
पट नागरिकों ने

सबने कहा
वह है मायावी
शिशुभक्षी
दैत्याकार
गृद्धवत्

विदुर. इस पर विषाद मत करो युयुत्सु

अज्ञानी, भय डूबे, साधारण लोगों से
यह तो मिलता ही है सदा उन्हें
जो कि एक निश्चित परिपाटी
से होकर पृथक्

अपना पथ अपने आप
निर्धारित करते हैं।

[प्रहरी २ के साथ गान्धारी का प्रवेश]

प्रहरी २. माता गान्धारी
पधारी हैं।

[युयुत्सु चरण छूता है। गान्धारी निश्चल खड़ी रहती है।]

विदुर. माता।
ये हैं युयुत्सु,
चरण छू रहे हैं
इनको आशीष दो।

गान्धारी. [क्षण भर चुप रहकर उपेक्षा से]
पूछो विदुर इससे
कुशल से हैं ?

[युयुत्सु और विदुर चुप रहते हैं।]

बेटा,
भुजाएँ ये तुम्हारी
पराक्रम भरी
थकी तो नही
अपने बन्धुजनों का
वध करते करते ?

[चुप]

पांडव के शिविरों के वैभव के बाद
तुम्हें अपना नगर तो
श्रीहत सा लगता होगा ?

[चुप]

चुप क्यों हो ?

थका हुआ होगा यह

विदुर इसे फूलों की शय्या दो
कोई पराजित दुर्योधन नही है यह
सोये जो जाकर
सरोवर की
कीचड़ में ।

[चुप]

चुप क्यों है विदुर यह ?
क्या मैं माता हूँ
इसके शत्रुओ की
इसीलिये ?

[जाने लगती है ।]

प्रहरी चलो

विदुर. माता ! यह शोभा नही देता तुम्हें
माता !

[रुकती नहीं चली जाती है ।]

युयुत्सु. यह क्या किया ?
माँ ने यह क्या किया
विदुर ?

[सिर झुकाकर बैठ जाता है ।]

अच्छा था यदि मैं
कर लेता समझौता असत्य से ।

विदुर. लेकिन
वह कोई समाधान तो नहीं था
समस्या का !

कर लेते यदि तुम
समझौता असत्य से
तो अन्दर से जर्जर हो जाते ।

युयुत्सु. अब यह माँ की कटुता
घृणा प्रजाओं की
क्या मुझको अन्दर से बल देगी ?

अन्तिम परिणति में
दोनों जर्जर करते हैं
पक्ष चाहे सत्य का हो
अथवा असत्य का ।

मुझको क्या मिला विदुर,
मुझको क्या मिला ?

विदुर. शान्त हो युयुत्सु
और सहन करो,
गहरी पीड़ाओं को गहरे में वहन करो

[कुछ देर पूर्व से गूँगे हाँफने की भयावह आवाज आ रही है जो सहसा तेज़ हो जाती है ।]

कैसी आवाज़ है प्रहरी यह ?

प्रहरी १. वह गूँगा सैनिक
है शायद दम तोड़ रहा ।

[प्रहरी २. जल लाता है]

विदुर. यह लो युयुत्सु

उसे जल दो
और स्नेह दो

मरतों को जीवन दो
झेलो कटुताओं को।

युयुत्सु. [गूँगे के पास जाकर]
गोद में रक्खो सर

मुँह खोलो
ऐसे, हाँ,

खोलो आँखें

[गूँगा आँख खोलता है, पानी मुँह से लगाता है। सहसा वह चीख उठता है। गिरता पड़ता हुआ, घिसलता हुआ भागता है।]

प्रहरी २. यह क्या हुआ ?

युयुत्सु. मैं ही अपराधी हूँ

यह था एक अश्वारोही कौरव सेना का

मेरे अग्निवाणों से
झुलस गए थे घुटने इसके

नष्ट किया है खुद मैंने
जिसका जीवन
वह कैसे अब
मेरी ही करुणा स्वीकार करे

मेरी यह परिणति है
स्नेह भी अगर मैं दूँ
तो वह स्वीकार नहीं औरों को

व्यास ने कहा
मुझसे
कृष्ण जिधर होंगे
जय भी उधर होगी

जय है यह कृष्ण की
जिसमें मैं वधिक हूँ
मातृवंचित हूँ
सब की घृणा का पात्र हूँ

विदुर. आज इस पराजय की वेला में
पता नहीं
जाने क्या झूठा पड़ गया कहाँ

सब के सब जैसे
उतर आये हैं अपनी धुरी से आज

एक एक कर सारे पहिये
हैं उतर गए जिससे
वह बिल्कुल निकम्मी धुरी
तुम हो
क्या तुम हो प्रभु ?

[सहसा अन्तःपुर में भयंकर आर्तनाद]

युयुत्सु. यह क्या हुआ विदुर ?

विदुर. प्रहरी जरा देखो तुम ?

[प्रहरी १ जाकर तुरन्त लौटता है]

प्रहरी १. संजय यह समाचार लाए हैं

विदुर.
युयुत्सु. } [आकुलता से] क्या ?

प्रहरी १. द्वन्द्वयुद्ध में...
राजा...

दुर्योधन...
......पराजित हुए।

[विदुर और युयुत्सु झपट कर अन्दर जाते हैं। आर्तनाद बढ़ता है। पीछे से कोई घोषणा करता है 'राजा दुर्योधन पराजित हुए।'

पीछे का पर्दा उठने लगता है। पांडवों की समवेत हर्षध्वनि और जयकार सुन पड़ती है। वनपथ का दृश्य। धनुष चढ़ाए, भागते हुए कृतवर्मा तथा कृपाचार्य आते हैं]

कृतवर्मा. यहीं कहीं छिप जाओ
कृपाचार्य।
शंखध्वनि करते हुए
जीते हुए पाण्डवगण
लौट रहे हैं अपने शिविरों को।

कृपाचार्य. ठहरो।
उठाओ धनुष
वह आ रहा है कौन?

कृतवर्मा. नहीं, नहीं, वह अश्वत्थामा है
छद्मवेष धारण कर
देखने गया था युद्ध दुर्योधन भीम का!

[अश्वत्थामा का प्रवेश]

अश्वत्थामा. मातुल सुनो!
मारे गये राजा दुर्योधन
अधर्म से..

कृपाचार्य. [चुप रहने का संकेत कर]
छिप जाओ!

पाण्डवों से होकर पृथक
क्रोधित बलराम
इधर आते हैं

कृतवर्मा. [नेपथ्य की ओर देखकर]
कृष्ण भी हैं
उनके साथ

कृपाचार्य. सुनो,
ध्यान देकर सुनो !

बलराम. [केवल नेपथ्य से]
नहीं !
नहीं !
नहीं !
तुम कुछ भी कहो कृष्ण
निश्चय ही भीम ने किया है अन्याय आज !

उसका अधर्म-वार
अनुचित था

कृपाचार्य. जाने क्या समझा रहे हैं कृष्ण ?

बलराम. [नेपथ्य-स्वर]
पाण्डव सम्बन्धी हैं ?
तो क्या कौरव शत्रु थे ?

मैं तो आज बता देता भीम को
पर तुमने रोक दिया

जानता हूँ मैं तुमको शैशव से
रहे हो सदा से मर्यादाहीन कूटबुद्धि

कृपाचार्य. [धनुष रखते हुए]
उधर मुड़ गये दोनों

बलराम. [नेपथ्य-स्वर; दूर जाता हुआ]
जाओ हस्तिनापुर
समझाओ गान्धारी को

कुछ भी करो कृष्ण
लेकिन मैं कहता हूं

सारी तुम्हारी कूटबुद्धि
और प्रभुता के बावजूद
शंखध्वनि करते हुए
अपने शिविरों को जो जाते हैं पाण्डवगण,
वे भी निश्चय मारे जायँगे अधर्म से !

अश्वत्थामा. [दोहराते हुए]
वे भी निश्चय मारे जायँगे अधर्म से !

कृपाचार्य. वत्स,
किस चिन्ता में लीन हो ?

अश्वत्थामा. वे भी निश्चय मारे जायँगे अधर्म से ।

सोच लिया
मातुल मैंने बिल्कुल सोच लिया

उनको मैं मारूंगा,

मैं अश्वत्थामा
उन नीचों को मारूंगा !

कृतवर्मा. [व्यंग्य से]
जैसे तुमने मारा था
वृद्ध याचक को ।

अश्वत्थामा. [चिढ़ कर]
हाँ, बिल्कुल वैसे ही
जब तक निर्मूल नहीं कर दूंगा
मैं पांडववंश को...

कृतवर्मा. लेकिन अश्वत्थामा,
पांडव-पुत्र बूढ़े नहीं हैं

निहत्थे भी नही हैं
अकेले भी नहीं हैं

खत्म हो चुका है
यह लज्जाजनक युद्ध

अपनी अधर्मयुक्त
उज्ज्वल वीरता कहीं और आजमाओ
हे पराक्रमसिन्धु !

अश्वत्थामा. प्रस्तुत हूँ उसके लिए भी मैं कृतवर्मा

व्यंग्य मत बोलो
उठाओ शस्त्र

पहले तुम्हारा करूँगा वध
तुम जो पांडवों के हितैषी हो

कृपाचार्य. [डाँट कर]
अश्वत्थामा !
रख दो शस्त्र

पागल हुए हो क्या
कुछ भी मर्यादाबुद्धि
तुममें क्या शेष नही।

अश्वत्थामा. सुनते हो पिता
मैं इस प्रतिहिंसा में
बिल्कुल अकेला हूँ

तुमको मारा धृष्टद्युम्न ने अधर्म से
भीम ने दुर्योधन को मारा अधर्म से

दुनिया की सारी मर्यादाबुद्धि
केवल इस निपट अनाथ अश्वत्थामा पर ही
लादी जाती है।

कृपाचार्य. बैठो,
इधर बैठो वत्स

हम सब हैं साथ तुम्हारे
इस प्रतिहिंसा में

किन्तु यदि छिप कर आक्रमण के सिवा
कोई दूसरा पथ निकल आये

अश्वत्थामा. दूसरा पथ !
पांडवों ने क्या कोई दूसरा पथ छोड़ा है ?

पांडवों की मर्यादा
मैंने आज देखी द्वन्द्वयुद्ध में,

कैसे अधर्मयुक्त वार से
दुर्योधन को नीचे गिरा दिया भीम ने

टूटी जाँघों, टूटी कोहनी, टूटी गर्दन वाले
दुर्योधन के माथे पर रख कर पाँव
पूरा बोझ डाले हुए भीम ने
बाँहें फैला कर पशुवत् घोर नाद किया

कैसे दुर्योधन की दोनो कनपटियों पर
दो दो नसें सहसा फूलीं और फूट गयीं

कैसे होठ खिंच आये
टूटी हुई जाँघों में एक बार हरकत हुई
आँखें खोल
दुर्योधन ने देखा
अपनी प्रजाओं को

कृपाचार्य. बस करो अश्वत्थामा

शायद तुम्हारा ही पथ
एक मात्र सम्भव पथ है

अश्वत्थामा. मातुल
फिर तुमको शपथ है

मत देर करो
शायद अभी जीवित है दुर्योधन !

उनके सम्मुख मुझको
घोषित करा दो तुम सेनापति

मैं पथ ढूँढूँगा प्रतिशोध का।

कृपाचार्य. चलो।
कृतवर्मा तुम भी चलो।

कृतवर्मा. नहीं, मुझे रहने दो
जाओ तुम

[कृपाचार्य और अश्वत्थामा जाते हैं।]

कृतवर्मा. चले गए दोनों ?
कायर नहीं हूँ मैं
दुख है मुझे भी दुर्योधन की हत्या का

किन्तु यह कैसा वीभत्स
आडम्बर है

हड्डी हड्डी जिसकी टूट गयी है
वह हारा हुआ दुर्योधन
करेगा नियुक्त इस पागल को सेनापति
जिसकी सेना में हैं शेष बचे
केवल दो
बूढ़े कृपाचार्य और कायर कृतवर्मा !

यह है अक्षौहिणी
कौरव सेना की परिणति :

जाने दो कृतवर्मा !
मौन रहो

पक्ष लिया है यदि दुर्योधन का
तो अपनी
अन्तिम साँसों तक निर्वाह करो।

[अकेले कृपाचार्य का प्रवेश]

आ गए कृपाचार्य ?

कृपाचार्य. देख नहीं सका मैं
और देर तक वह भयानक दृश्य।

कोटर से झाँक रहे थे
दो खूँखार गिद्ध !
इस झाड़ी से उस झाड़ी में थे
घूम रहे
गीदड़ और भेड़िए
जीभें निकाले
लोलुप नेत्रों से
देखते हुए अपलक
राजा दुर्योधन को।

कृतवर्मा. [व्यंग्य से]
फिर कैसे सेनापति
अश्वत्थामा का अभिषेक हुआ ?

कृपाचार्य. बोले वे
कृपाचार्य
तुम हो विप्र
यहाँ जल नही है
तुम स्वेद-जल से ही
कर दो अभिषेक वीर अश्वत्थामा का

कैसे उठाऊँ हाथ
अपना आशीश को
भूल गयी हैं बाँहें
कन्धों के पास से

मैंने निर्जीव हाथ उनका उठाया
आशीर्वाद मुद्रा में
किन्तु घोर पीड़ा से
आशीर्वाद के बजाय
हृदयविदारक स्वर में वे चीख उठे

अश्वत्थामा. [प्रवेश करते हुए]
पर जीवित रहेंगे वे

उन्होंने कहा है
अश्वत्थामा
जब तक प्रतिशोध का
न दोगे
सम्वाद मुझे
तब तक जीवित रहूँगा मैं
चाहे मेरे अंग अंग
ये सारे वनपशु चबा जायँ।

सुनते हो कृतवर्मा
कल तक मैं लूंगा प्रतिशोध
सेना यदि छोड़ जाय
तब भी अकेला मैं...

कृतवर्मा. [लेटते हुए]
मैं हूँ तुम्हारे साथ
सेनापति [ऊब की जमुहाई]

कृपाचार्य. अब तो कम से कम
विश्राम हमें करने दो

अश्वत्थामा. [नये स्वर में]
सो जाओ आज रात
सैनिकगण !

कल सेनापति अश्वत्थामा
बतलाएगा
तुमको क्या करना है।

[कृतवर्मा कृपाचार्य विश्राम करते हैं। अश्वत्थामा धनुष लेकर पहरा देता है]

अश्वत्थामा. कितना सुनसान हो गया है वन
जाग रहा हूँ केवल मैं ही यहाँ
इमली के, बरगद के, पीपल के
पेड़ों की छायाएँ सोई हैं... ...

[धीरे धीरे स्टेज पर अन्धेरा होने लगता है। वन में सियारों का रोदन। पशुओं के भयानक स्वर बढ़ते हैं। स्टेज पर बिलकुल अन्धेरा। केवल अश्वत्थामा के टहलते हुए आकार का भास होता है। सहसा कर्कश कौए का स्वर और दाईं ओर से बिलकुल काले काले कपड़े पहने कौए की मुखाकृति का एक नर्तक शिशु आता है, पंख खोल कर मँडराता है और दो बार स्टेज का चक्कर लगा कर घुटनों के बल झुक कर कन्धों पर चिबुक रख कर पक्षियों की सोने की मुद्रा में बैठ जाता है। इस बीच में अश्वत्थामा पर बिलकुल प्रकाश नहीं पड़ता। एक नीली प्रकाश-रेखा इसी पर पड़ती है।

फिर स्वर तेज़ होता है और बाईं ओर बिलकुल श्वेत-वसनधारी एक उलूकाकृति वाला तेज पंजों वाला नर्तक शिशु आता है। कौए को देखता है। सावधान होता है, फिर उल्लसित होकर पंजे तेज़ करता है, पंख फड़फड़ाता है। फिर नई मुद्राओं में बराबर आक्रमण करने का अभिनय करता है।

एक प्रकाश अश्वत्थामा पर भी पड़ता है जो स्तब्ध कौतूहल से इस घटना को देख रहा है।

कौआ एक बार अलसायी करवट लेता है और उलूक को देख कर भी बिना ध्यान दिए सो जाता है। उलूक पहले सहम जाता है,

उसे सोया देखकर दो एक बार सावधानी से आजमाता है कि कहीं कौआ सोने का नाट्य तो नहीं कर रहा है।

फिर सहसा उस पर टूट पड़ता है। भयानक रव, कोलाहल, चीत्कार। दोनों गुथे रहते हैं। बिलकुल अंधकार। फिर प्रकाश। कौए के कुछ टूटे हुए पंख और उलूक के पंजे रक्त में लथपथ। उलूक उन पंखों को उठा उठा कर नृत्य करता है। वधोल्लास का ताण्डव।

एक प्रकाश अश्वत्थामा पर। सहसा उसकी मुखाकृति बदलती है और वह जोर से अट्टहास कर पड़ता है। उलूक घबरा कर रुक जाता है। देखता है अश्वत्थामा अट्टहास करता हुआ उसकी ओर बढ़ता है। उलूक कटे पंख उसकी ओर फेंक कर भागता है।

अश्वत्थामा कटा पंख हाथ में लेकर उल्लास से चीखता है—]

अश्वत्थामा. मिल गया !
मिल गया !
मातुल मुझे मिल गया !

[प्रकाश होता है। वह रक्तसना कटा पंख हाथ में लिए उछल रहा है। दोनों योद्धा चौंक कर उठते हैं और कृतवर्मा घबरा कर तलवार खींच लेता है !]

कृपाचार्य. क्या मिल गया वत्स ?

अश्वत्थामा. मातुल !
सत्य मिल गया
बर्बर अश्वत्थामा को :

कृतवर्मा. यह घायल कटा पंख

अश्वत्थामा. जैसे युधिष्टिर का अर्द्धसत्य
घायल और कटा हुआ !

कृपाचार्य. कहाँ जा रहे हो तुम !

अश्वत्थामा. पांडव शिविर की ओर
नींद में निहत्थे, अचेत

पड़े होंगे सारे
विजयी पांडवगण !

[अपना कमरबन्द कसता है]

कृपाचार्य. अभी ?

अश्वत्थामा. बिल्कुल अभी

वे सब अकेले हैं

कृष्ण गये होंगे हस्तिनापुर
गान्धारी को समझाने

इससे अच्छा अवसर
आखिर मिलेगा कब ?

कृतवर्मा. यह सेनापति का आदेश है ?

अश्वत्थामा. [बिना सुने]
तुमने कहा था
नरो वा कुंजरो वा !

कुंजर की भांति
मैं केवल पदाघातों से
चूर करूंगा धृष्टद्युम्न को !

पागल कुंजर
से कुचली कमल-कली की भांति
छोड़ूंगा नहीं उत्तरा को भी
जिसमें गर्भित है
अभिमन्यु-पुत्र
पाण्डव कुल का भविष्य ।

कृपाचार्य. नहीं ! नहीं ! नहीं !
यह मैं नहीं होने दूंगा !

अश्वत्थामा. होकर रहेगा यह !
साथ नहीं दोगे तो
अकेले मैं जाऊंगा
जाऊंगा
जाऊंगा !

[कृतवर्मा पीछे-पीछे सिर झुकाये जाता है]

कृपाचार्य. रुको !
किन्तु सोचो अश्वत्थामा......

[अश्वत्थामा बिना सुने चला जाता है। कृपाचार्य पीछे-पीछे पुकारते हुए जाते हैं ! अश्वत्थाऽऽमाऽऽ ! अश्वत्थाऽऽमाऽऽ !! अश्वत्थाऽऽमाऽऽ !!! यह ध्वनि धीरे धीरे दिगन्त में खो जाती है। तीन रथों की घर्घराहट और घोड़ों की टापें शेष बचती हैं। पर्दा गिरता है]

अन्तराल

पंख, पहिये और पट्टियाँ

[वृद्ध याचक प्रवेश करता है। स्टेज पर मकड़ी के जाले जैसी प्रकाश-रेखाएँ और कुछ-कुछ प्रेतलोक सा वातावरण।]

पहले मैं झूठा भविष्य था, वृद्ध याचक था
अब मैं प्रेतात्मा हूँ

अश्वत्थामा ने मेरा वध किया था !

जीवन एक अनवरत् प्रवाह है
और मौत ने मुझे बाँह पकड़ कर किनारे खींच लिया है
और मैं तटस्थ रूप से किनारे पर खड़ा हूँ
और देख रहा हूँ—
कि
यह युग एक अन्धा समुद्र है
चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ

और दर्रों से
और गुफ़ाओं से

उमड़ते हुए भयानक तूफ़ान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं
और उस बहाव में मन्थन है, गति है;
किन्तु नदी की तरह सीधी नही
बल्कि नागलोक के किसी गह्वर में
सैकड़ों, केंचुल चढ़े, अन्धे साँप
एक दूसरे से लिपटे हुए
आगे पीछे
ऊपर नीचे
टेढ़े मेढ़े
रेंग रहे हों
उसी तरह सैकड़ों धाराएं, उपधाराएं
अन्धे साँपों की तरह बिलबिला रहीं हैं।

ऐसा है यह अन्धा समुद्र
जिसे हम आज का भवप्रवाह कह सकते हैं।

और कुछ सफ़ेद केंचुल ऊपर तैर आये हैं
सफ़ेद पट्टियो की तरह,
ये पट्टियाँ गान्धारी की आँखो पर हैं,
सैनिकों के जख्मों पर हैं

मैंने अपनी प्रेतशक्ति से
सारे प्रवाह को
कथा की गति को बाँध दिया है,
और सब पात्र अपने स्थान पर स्थिर
हो गये हैं
क्योंकि मैं चीर-फाड़ कर हरेक की आन्तरिक
असंगति समझना चाहता हूँ!

ये हैं वे पात्र
मेरी मन्त्रशक्ति से परिचालित वे
छायारूप में आते हैं!

युयुत्सु, विदुर, संजय यान्त्रिक गति से मंच के आर-पार मन्त्रमुग्ध से आते

हैं, और फिर वृद्ध के पीछे एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं; और फिर एक-एक कर आगे बढ़ कर बोलते हैं; और फिर पीछे अपने स्थान पर चले जाते हैं।]

मैं हूं युयुत्सु

मैं उस पहिये की तरह हूं
जो पूरे युद्ध के दौरान मे रथ में लगा रहा
पर जिसे अब लगता है कि वह ग़लत धुरी में लगा था
और मै अपनी उस धुरी से उतर गया हूं !

मैं संजय हूं
जो कर्मलोक से बहिष्कृत है

मैं दो बड़े पहियों के बीच लगा हुआ
एक छोटा निरर्थक शोभा चक्र हूं
जो बड़े पहियों के साथ घूमता है
पर रथ को आगे नही बढ़ाता
और न धरती ही छू पाता है !
और जिसके जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है
कि वह धुरी से उतर भी नही सकता !

मैं विदुर हूं
कृष्ण का अनुगामी, भक्त और नीतिज्ञ
पर मेरी नीति साधारण स्तर की है
और युग की सारी स्थितियाँ असाधारण हैं
और अब मेरा स्वर संशयग्रस्त है
क्योंकि लगता है कि मेरे प्रभु
उस निकम्मी धुरी की तरह हैं
जिसके सारे पहिये उतर गये हैं
और जो खुद घूम नहीं सकती
पर संशय पाप है और मैं पाप नही करना चाहता !

[नेपथ्य में घंटियों की ध्वनि और एक मोरपंख उड़ता हुआ स्टेज पर गिरता है। वृद्ध उसे उठा कर कहता है।]

यह क्या है ?
मोरपंख ?
गान्धारी को आश्वासन देकर
हस्तिनापुर से लौटते हुए
कृष्ण के किरीट से लगता है यह पंख गिर पड़ा है

[सुनकर]

हाँ, यह उन्हीं के रथ की घण्टियाँ हैं
रोक लूँ उनका रथ ?
जैसे रोक दिया है प्रवाह मैंने कथा का ?

[सम्मोहन की असफल चेष्टा कर]

नहीं, उनमें सारे समय के प्रवाह की मर्यादा बँध जाती है
बाँध नहीं सकता हूँ उसको मैं !

[दूसरे रथ की ध्वनि]

हाँ, यह दूसरा रथ है,
जिसकी गति को मैं तो क्या कृष्ण भी रोक नहीं पाये हैं

यह रथ है मेरे वधिक अश्वत्थामा का
कौए के कटे पंख सी काली
रक्तरंगी घृणा है भयानक उसकी
अदम्य !
मोरपंख उससे हारेगा या जीतेगा ?
घृणा के उस नये कालियनाग का दमन
अब क्या कृष्ण कर पायेंगे ?

[रथ की ध्वनियाँ तेज होती हैं।]

रथ बढ़ते जाते हैं
मैं हूँ अशक्त !
कथा की गति अब मेरे बाँधे नहीं बँधती है
कृष्ण का रथ पीछे छूटा जाता है अँधियारे में

वह देखो अश्वत्थामा का रथ
पाण्डव शिविर में पहुँच गया !

[रथ की ध्वनि बन्द]

आह यह है कौन
विराटकाय दैत्य पुरुष अन्धकार में
अश्वत्थामा के सम्मुख काली चट्टानों सा अड़ा हुआ...

[इस तरह घबरा कर हथेलियों से आँखें बन्द कर लेता है जैसे वह कुछ बहुत भयानक देख रहा हो ! नेपथ्य में भयानक गर्जन]

[पटाक्षेप]

चौथा अंक

गान्धारी का शाप

कथा-गायन

वे शंकर थे
वे रौद्र-वेषधारी विराट
प्रलयंकर थे
जो शिविर-द्वार पर दीखे
अश्वत्थामा को

अनगिनत विष भरे साँप
भुजाओं पर
बाँधे
वे रोम रोम में अगणित
महाप्रलय
साधे

जो शिविर-द्वार पर दीखे
अश्वत्थामा को

बोले वे जैसे प्रलय-मेघ-गर्जन-स्वर
"मुझको पहले जीतो तब जाओ अंदर !"

युद्ध किया अश्वत्थामा ने पहले
है और कौन जो दिव्यास्त्रों को सह ले

शर, शक्ति, प्रास, नाराच, गदाएँ सारी
जो क्रोधित हो अश्वत्थामा ने मारीं
वे उनके एक रोम में
समा गयीं
सब
वह हार मान वन्दना
लगा करने
तब

[अश्वत्थामा का स्वर]

जटा कटाह सम्भ्रमन्निलिम्प निर्झरी समा
विलोल वीचि वल्लरी विराजमान मूर्धनि
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाट पट्ट पावके
किशोर चन्द्र शेखरे रति प्रतिक्षण मम ।

वे आशुतोष हैं
हाथ उठाकर बोले
"अश्वत्थामा तुम विजयी होगे निश्चय
हो चुका पांडवों के पुण्यों का अब क्षय
मैं कृष्णा-प्रेम-वश
अब तक इनकी रक्षा करता था
मैं विजय दिलाता
इनमें नया पराक्रम भरता था
पर कर अधर्म-वध
द्वार उन्होंने स्वतः मृत्यु के खोले"

वे आशुतोष हैं
हाथ उठाकर बोले !

[पर्दा उठने पर गान्धारी बैठी हुई दीख पड़ती है, और विदुर तथा संजय इस मुद्रा में खड़े हैं जैसे वार्तालाप पहले से चल रहा हो ।]

गान्धारी. फिर क्या हुआ ?
संजय ! फिर क्या हुआ ?

संजय. [पाठ करते हुए]
शंकर की दैवी असि लेकर अश्वत्थामा
जा पहुंचा योद्धा धृष्टद्युम्न के सिरहाने
बिजली सा झपट, खींच कर शय्या के नीचे
घुटनों से दाब दिया उसको
पंजों से गला दबोच लिया
आँखों के कोटर से दोनों साबित गोले
कच्चे आमों की गुठली जैसे उछल गए
खाली गड्ढों में काला लोहू उबल पड़ा

गान्धारी. अन्धा कर दिया उसको पहले ही
कितना दयालु है अश्वत्थामा

संजय. बड़े कष्ट से जोड़-जोड़ कर शब्द
कहा उसने 'वध करना है तो अस्त्रों से कर दो'
'तुम योग्य नहीं हो इसके नरपशु धृष्टद्युम्न !
तुमने निःशस्त्र द्रोण की कायर हत्या की,
यह बदला है !' फिर चूर-चूर कर दिए
ठोकरों से उसने मर्मस्थल...

विदुर. बस करो

गान्धारी. फिर क्या हुआ ?

संजय. कोलाहल सुन जो अस्तव्यस्त योद्धा जागे
आँखें मलते बाहर आये
उनको क्षण भर में गिरा दिया
तीखे ज़हरीले तीरों से

शतानीक को कुछ न मिला तो पहिए से ही
वार किया।
अश्वत्थामा ने काट दिए उसके घुटने
सोया था दूर शिखंडी उसके पास पहुँच
माथे के बीचोबीच एक वाण मारा
जो मस्तक फाड़ चीरता चन्दन-शय्या को
धरती के अन्दर समा गया।

गान्धारी. फिर क्या हुआ संजय ?

विदुर. हृदय तुम्हारा पत्थर का है गान्धारी !

गान्धारी. पत्थर की खानों से मणियाँ निकलती हैं
बाधा मत डालो विदुर
संजय फिर...

विदुर. संजय नहीं, मुझसे सुनो
कितनी जघन्य वह
प्रतिहिंसा थी

कृपाचार्य, कृतवर्मा बाहर थे
जितने बच्चे बूढ़े नौकर बाहर भागे
वाणों से छेद दिया उनको कृतवर्मा ने
डरे हुए हाथी चिग्घाड़ कर शिविरों को
चीरते हुए भागे
शय्या पर सोई हुई
स्त्रियाँ जहाँ थीं वहीं कुचल गईं
उसी समय उन दोनों वीरों ने
पाँडव शिविरों में लगा दी आग।

गान्धारी. काश कि मैं अपनी आँखों से
देख पाती यह ?
कैसी ज्योति से घिरा होगा तब अश्वत्थामा !

संजय. धुँआ, लपट, लोथें, घायल घोड़े, टूटे रथ
रक्त, मेद, मज्जा, मुण्ड,
खंडित कबन्धों में
टूटी पसलियों में
विचरण करता था अश्वत्थामा
सिंहनाद करता हुआ

नररक्त से वह तलवार उसके हाथों में
चिपक गई थी ऐसे
जैसे वह उगी हो
उसी के भुजमूलों से ।

गान्धारी. ठहरो
संजय ठहरो

दिव्यदृष्टि से मुझको दिखला दो एक बार
वीर अश्वत्थामा को ।

संजय. माता वह कुरूप है
भयंकर है

गान्धारी. किन्तु वीर है

उसने वह किया है
जो मेरे सौ पुत्र नहीं कर पाये
द्रोण नहीं कर पाये !
भीष्म नहीं कर पाये !

संजय. माता !
व्यास ने मुझको दिव्यदृष्टि दी थी
केवल युद्ध की अवधि के लिए
पता नहीं कब यह सामर्थ्य मुझसे छिन जाय !

गान्धारी. इसीलिए कहती हूँ ।

अन्यायी कृष्ण इसके बाद अश्वत्थामा को
जीवित नहीं छोड़ेंगे

देखने दो मुझको उसे एक बार

संजय. मैं प्रयास करता हूँ
मेरे सारे पुण्यों का बल समवेत होकर
दर्शन करायेगा
आप को अश्वत्थामा के

[ध्यान करता है ।]

दीवारों हट जाओ
राह में जो बाधायें दृष्टि रोकती हों
वे माया से सिमट जाँय

दूरी मिट जाय

क्षितिज रेखा के पार
दृष्टि से छिपे हैं जो दृश्य वे निकट आ जाँय।

[पीछे का पर्दा हटने लगता है, आगे के प्रकाश बुझने लगते हैं ।]

अंधेरा है
यह वह स्थल है
जहाँ मरणासन्न दुर्योधन कल तक पड़ा था

अस्त्र-शस्त्र लिए हुए
कौन ये दोनों योद्धा आये ?

ये हैं कृपाचार्य, कृतवर्मा ।

[पीछे दूर से वे अंधेरे में पुकारते हैं; 'महाराज दुर्योधन !' 'महाराज दुर्योधन ।']

कृपाचार्य. कृतवर्मा
ज्योतिबाण फेंको
कुछ तिमिर घटे

कृतवर्मा. [नेपथ्य की ओर देखकर]
वे हैं महाराज

निश्चय ही अर्द्ध-मृत दुर्योधन को
खींच ले गए हैं हिंसक पशु उस झाड़ी में

कृपाचार्य. जीवित हैं अभी
होंठ हिलते से लगते हैं

कृतवर्मा. समझ नहीं पड़ता है

मुख से बह-बह कर रक्त
काले-काले थक्कों में जमा हुआ है चारों ओर।
हलक़ भी जमी होगी।

कृपाचार्य. [रुक-रुक कर, जरा जोर से]
महाराज
सेनापति अश्वत्थामा ने
ध्वस्त कर दिया है पूरे पाडव शिविर को आज
शेष नहीं बचा एक भी योद्धा

कृतवर्मा. महराज के मुख पर
आभा सन्तोष की झलक आयी

कृपाचार्य. पलकें भी खोल लीं

कृतवर्मा. ढूँढ रहे हैं किसे
शायद अश्वत्थामा को ?

कृपाचार्य. महाराज !
अश्वत्थामा अपना ब्रह्मास्त्र
और मणि लेने गया है
उसे लेकर हम तीनों घोर वन में चले जायेंगे।

कृतवर्मा. महाराज की आँखों से बह रहे हैं अश्रु।

[गान्धारी और संजय पर प्रकाश पड़ता है।]

संजय. यह क्या माता ?
पट्टी उतारी ही नहीं तुमने
वह देखो आया अश्वत्थामा !

गान्धारी. नहीं ! नहीं ! नही !
देख नहीं पाऊँगी
किसी भी तरह मैं
मरणोन्मुख दुर्योधन को

रहने दो संजय
यह पट्टी बंधी है बंधी रहने दो
मुझको बताते जाओ क्या हो रहा है वहाँ ?

विदुर. कुछ भी नही दीख पड़ रहा है मुझे !

संजय. अश्वत्थामा आ गया है
पर शीश झुकाए है
बिल्कुल चुप है

[आगे का प्रकाश पुनः बुझ जाता है ।]

कृपाचार्य. महाराज
आप का अश्वत्थामा आ गया ।

हाथ उठा सकते नही
एक बार दृष्टि उठा कर ही दे दें आशीष इसे ।

अश्वत्थामा. नही, स्वामी, नही !

मैं अब भी अनधिकारी हूँ ।
मैंने प्रतिशोध ले लिया धृष्टद्युम्न से
पिता की पाप-हत्या का

किन्तु अब भी आपका प्रतिशोध नहीं ले पाया ।

शेष है अभी भी,
सुरक्षित है उत्तरा
जन्म देगी जो पाडव उत्तराधिकारी को ।

किन्तु स्वामी,
अपना कार्य पूरा करूँगा मैं।

सूर्यलोक में जब द्रोण से मिलें आप
कहें...

कृतवर्मा किससे कहते हो
अश्वत्थामा, किससे कहते हो ?
महाराज नहीं रहे

[शोक सूचक संगीत। कृपाचार्य विह्वल होकर मुँह ढक लेते हैं। आगे गान्धारी चीख़ कर मूर्छित हो जाती है।]

अश्वत्थामा. किसका चीत्कार है यह ?

माता गान्धारी
मैं कहता हूँ धैर्य धरो

जैसे तुम्हारी कोख कर दी है पुत्रहीन कृष्ण ने
वैसे ही मैं भी उत्तरा को कर दूँगा पुत्रहीन
जीवित नहीं छोड़ूँगा उसको मैं
कृष्ण चाहे सारी योगमाया से रक्षा करें

[पीछे का पर्दा गिरने लगता है।]

गान्धारी. संजय,
संजय, मेरी पट्टी उतार दो
देखूँगी मैं अश्वत्थामा को
वज्र बना दूँगी उसके तन को

संजय
लो मैंने यह पट्टी उतार फेंकी
कहाँ है अश्वत्थामा।

[पीछे का पर्दा बिल्कुल बन्द हो जाता है।]

संजय. यह क्या हुआ माता ?
अब तक जो दिव्यदृष्टि से मैं था देख रहा
सहसा उस पर एक पर्दा सा छा गया

गान्धारी. जल्दी करो
आँसू न घिर आयें

संजय. दीवारो हट जाओ !
दीवारो हट जाओ !
माता ! माता !
मेरी दिव्यदृष्टि को क्या हो गया आज ?

दीवारो !
दीवारो !

आँखें नही खुलती हैं
अन्धों को सत्य दिखाने में क्या
मुझको भी अन्धा ही होना है।

विदुर. संजय
तुमको दीख नही पड़ता क्या
वन, या दुर्योधन, या...

संजय. नही विदुर
केवल दीवारें ! दीवारें ! दीवारें !

विदुर. सब समाप्त होने की
जैसे यही एक वेला है।

[गान्धारी जड़ बैठी है !]

संजय. व्यास ! क्यों मुझको दिव्यदृष्टि दी थी
थोड़ी सी अवधि के लिये
आज से कभी भी इस सीमित दृश्य-जगत से
मैं तृप्ति नहीं पाऊँगा

सीमाएँ तोड़ कर अनन्त में समाहित होने को
प्यासी मेरी आत्मा रहेगी सदा !

विदुर. माता उठो !
छोड़ो हस्तिनापुर को

चल कर समन्तपंचक
अन्तिम संस्कार करो अपने कुटुम्बियों का
संजय
सब वधुओं से कह दो, परिजनों से कह दो,
आज ही करेंगे प्रस्थान युद्धभूमि को ।

संजय. [जाते हुए]
अट्ठारह दिनों का लोमहर्षक संग्राम यह
मुझको दृष्टि देकर और लेकर चला गया ।

[युयुत्सु का प्रवेश]

विदुर. चलो माता,
महाराज को बुला लो ।
युयुत्सु तुम भी चलो ।

युयुत्सु. जिसने किया हो खुद वध
उसकी अंजलि का तर्पण
स्वीकार किसे होगा भला ?

वे मेरे बन्धु हैं
मेरे परिजन
किन्तु सुनो कृष्ण ।
आज मैं किस मुँह से उनका तर्पण करूँगा ?

[सब जाते हैं । पीछे का पर्दा धीरे-धीरे उठता है ।]

कथा-गायन

वे छोड़ चले कौरव-नगरी को निर्जन
वे छोड़ चले वह रत्नजटित सिंहासन
जिसके पीछे था युद्ध हुआ इतने दिन

सूनी राहें, चौराहे, घर के आँगन
जिस स्वर्ण-कक्ष में रहता था दुर्योधन
उसमें निर्भय वनपशु करते थे विचरण

वे छोड़ चले कौरव नगरी को निर्जन
करने अपने सौ मृत पुत्रों का तर्पण

आगे रथ पर कौरव विधवाओं को ले
है चली जा चुकी कौरव-सेना सारी
पीछे पैदल आते हैं शीश झुकाए
धृतराष्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय, गान्धारी

[क्रम से धृतराष्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय और गान्धारी धीरे-धीरे चलते हुए मंच पर आते हैं। धृतराष्ट्र एक बार लड़खड़ाते हैं]

धृतराष्ट्र. वृद्ध है शरीर
और जर्जर है
चला नहीं जाता है।

विदुर. संजय तनिक रुको।

[महाराज बैठ जाते हैं। सब रुक जाते हैं।]

युयुत्सु. किसके हैं रथ वे
उधर झाड़ी में छिपे छिपे...

संजय. वे तो हैं कृपाचार्य !

विदुर. इधर कृतवर्मा हैं !

गान्धारी. संजय ! क्या अश्वत्थामा...?

विदुर. हाँ माता
वह है अश्वत्थामा

धृतराष्ट्र. जाने दो

गान्धारी. रोको उसे

संजय. रुको
ओ रुको अश्वत्थामा।

हम हैं संजय
माता गान्धारी, महाराज,
संग हैं हमारे
विदुर और यु...

धृतराष्ट्र. संजय!
मत नाम लो युयुत्सु का
क्रोधित अश्वत्थामा जीवित नहीं छोड़ेगा

मेरा है केवल एक पुत्र शेष
खोकर उसे कैसे जीवित रहूँगा?

गान्धारी. और जब पुत्र वह पराक्रमी यशस्वी है।

संजय चलो
यहीं रहने दो युयुत्सु को

पुत्र कहीं छिप जाओ
प्राण बचाओ
अब तुम्हीं हो आश्रय
अपने अन्धे पिता वृद्ध माता को

[संजय के साथ जाती है]

युयुत्सु. यह सब मैं सुनूंगा
और जीवित रहूँगा
किन्तु किसके लिए
किन्तु किसके लिए

धृतराष्ट्र. मेरे अन्धेपन से तुम थे उत्पन्न पुत्र!
वही थी तुम्हारी परिधि!

उसको उल्लंघन कर तुमने
जो ज्योतिवृत्त में रहना चाहा...

विदुर. क्या वह अपराध था ?

[गान्धारी और संजय लौट आते हैं]

धृतराष्ट्र. आ गए संजय तुम ?

संजय. अश्वत्थामा तो
बिल्कुल बदला हुआ सा है।
वीर नहीं वह तो जैसे भय की प्रतिमूर्ति है।
रह रह काँप उठता है
रथ की वल्गाएँ हाथों से छूट जाती हैं !

[दूर कहीं शंख-ध्वनि]

गान्धारी. पागल है

कहता है मैं वल्कल धारण कर
रहूँगा तपोवन में
डरता है कृष्ण से

पुनः कई विस्फोट और एक अलौकिक प्रकाश]

संजय. पांडवों को लेकर साथ
कृष्ण आ रहे हैं
उसकी खोज में

गान्धारी. मार नहीं पायेंगे कृष्ण उसे
मैंने उसे देख कर
वज्र कर दिया है उसके तन को।

[दूर कहीं विस्फोट]

विदुर. लगता है
ढूंढ़ लिया प्रभु ने उसे।

धृतराष्ट्र. संजय देखो तो जरा।

संजय. मेरी दिव्यदृष्टि वापस ले ली है व्यास ने

युयुत्सु. यह तो प्रकाश है
अर्जुन के अग्निवाण का !

विदुर. झुलस झुलस कर
गिर रही है वनस्पतियाँ

[बुझे हुए दो अग्नि-वाण मंच पर गिरते हैं।]

धृतराष्ट्र. संजय दूर निकल चलो इस क्षेत्र से !

गान्धारी. किन्तु कृष्ण तुमने अनिष्ट यदि किया
अश्वत्थामा का......

[सुलगते हुए दो वाण फिर गिरते हैं।]

विदुर. माता चलो,
सुरक्षित नहीं है यहाँ।
गिर रहे हैं जलते वाण यहाँ।

[जाते हैं। कुछ क्षण स्टेज खाली रहता है। नेपथ्य में शंखनाद। लगातार विस्फोट। तीव्र प्रकाश।

अकस्मात् दौड़ता हुआ अश्वत्थामा आता है। उसके गले में वाण चुभा हुआ है। खींचकर वाण निकालता है और रक्त बह निकलता है। इतने में दूसरा वाण आता है जिसे वह बचा जाता है और फिर तन कर खड़ा हो जाता है। क्रोध से आरक्त मुख।]

अश्वत्थामा. रक्षा करो
अपनी अब तुम अर्जुन !

मैंने तो सोचा था
वल्कल धारण कर रहूँगा तपोवन में
पूरे पांडव वंश को
निर्मूल किये बिना शायद

युद्धलिप्सा
नहीं शान्त होगी कृष्ण की ।
अच्छा तो यह लो !
यह है ब्रह्मास्त्र
अर्जुन स्मरण करो अपने
विगत कर्म
इसके प्रभाव को
एक क्या करोड़ कृष्ण मिटा नहीं पायेंगे ।

सुनो तुम सब नभ के देवगण
अपने अपने
विमानों पर आरूढ़
देख रहे हो जो इस युद्ध को
साक्षी रहोगे तुम
विवश किया है मुझे अर्जुन ने

यह लो
यह है ब्रह्मास्त्र !

[कोई काल्पनिक वस्तु फेंकता है । ज्वालामुखियों की सी गड़गड़ाहट । तेज़ महताबी सा प्रकाश, फिर अन्धेरा ।]

व्यास. [आकाशवाणी]
यह क्या किया
अश्वत्थामा ! नराधम !
यह क्या किया ?

अश्वत्थामा. कौन दे रहा है अपनी
मृत्यु को निमन्त्रण
मेरे प्रतिशोध में बाधक बन कर

व्यास. मैं हूँ व्यास ।
ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का ।

यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु !
तो आगे आने वाली सदियों तक

पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ठग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी

जो कुछ भी ज्ञान संचित किया है मनुष्य ने
सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में
सदा सदा के लिये होगा विलीन वह
गेहूं की बालों में सर्प फुफकारेंगे
नदियों में बह बहकर आयेगी पिघली आग।

अश्वत्थामा. भस्म हो जाने दो
आने दो प्रलय व्यास !
देखूं मैं रक्षण-शक्ति कृष्ण की ?

व्यास. तो देख उधर
कृष्ण के कहने से, पहले ही
अर्जुन ने छोड़ दिया था नभ में अपना ब्रह्मास्त्र
लेकिन नराधम
ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेंगे
सूरज बुझ जायेगा
धरा बंजर हो जायेगी।

[फिर गड़गड़ाहट। तेज़ प्रकाश और फिर अन्धेरा]

अश्वत्थामा. मैं क्या करूं
मुझको विवश किया अर्जुन ने
मैं था अकेला और अन्यायी कृष्ण पांडवों के सहित
मेरा वध करने को आतुर थे।

[भयानक आर्तनाद]

व्यास. अर्जुन सुनो
मैं हूं व्यास
तुम वापस ले लो ब्रह्मास्त्र को

अश्वत्थामा ! अपनी कायरता से तू
मत ध्वस्त कर मनुजता को
वापस ले अपना ब्रह्मास्त्र और मणि देकर
वन में चला जा......

अश्वत्थामा. व्यास ! मैं अशक्त हूँ;
मुझको है ज्ञात रीति केवल आक्रमण की
पीछे हटना मुझको या मेरे अस्त्रों को
मेरे पिता ने सिखाया नहीं।

व्यास. सूरज बुझ जायेगा
धरा बंजर हो जायेगी।

अश्वत्थामा. अच्छा तो सुन लो व्यास
सुन लो कृष्ण—

यह अचूक अस्त्र अश्वत्थामा का
निश्चित गिरे जाकर
उत्तरा के गर्भ पर।
वापस नही होगा।

[भयानक विस्फोट]

व्यास. तुम पशु हो !
तुम पशु हो !
तुम पशु हो !

[अश्वत्थामा विकट अट्टहास करता है।]

अश्वत्थामा. था मैं नहीं
मुझको युधिष्ठिर ने बना दिया

[पर्दा गिरकर आगे का दृश्य। नेपथ्य में पाण्डव-वधुओं का क्रन्दन सुन पड़ता है। गान्धारी और संजय आते हैं]

गान्धारी. चलते चलो संजय !
क्रन्दन यह कैसा है ?
सुनते हो ?

संजय. अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र जा गिरा है
उत्तरा के गर्भ पर

गान्धारी. करेगा,
वह अपना प्रण पूरा करेगा

संजय. [रुककर]
माता किन्तु कृष्ण उसे क्षमा नहीं करेंगे

गान्धारी. चलते चलो संजय

उसका वध नहीं कर सकेंगे कृष्ण
चक्र यदि कृष्ण का खण्ड खण्ड मुझको
कर भी दे
तो,
मैं तो अभी जाऊँगा वहाँ
जहाँ गहन मृत्युनिद्रा में सोया है दुर्योधन

चलते चलो संजय !

[जाते हैं । धृतराष्ट्र और युयुत्सु का प्रवेश]

धृतराष्ट्र. वत्स तुम मेरी आयु लेकर भी
जीवित रहो
अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र
यदि गिरा है उत्तरा पर
तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर
सब राजपाट तुमको ही सौंप दें !

युयुत्सु. [कटु हँसी हँस कर]
और इस तरह

अश्वत्थामा की पशुता
मेरा खोया हुआ भाग्य फिर लौटा लाये !

नहीं पिता नहीं
इतना ही दंशन क्या काफी नहीं है इस अभागे को

[पाण्डवों की जयध्वनि सुन पड़ती है। विदुर आते हैं]

धृतराष्ट्र. यह कैसी जयध्वनि ?

विदुर. महाराज
रक्षा करली उत्तरा की मेरे प्रभु ने !

[एक क्षण को स्तब्ध रहकर]

धृतराष्ट्र. कैसे विदुर ?

विदुर. बोले वे
यदि यह ब्रह्मास्त्र गिरता है तो गिरे
लेकिन जो मुर्दा शिशु होगा उत्पन्न
उसे जीवित करूँगा मैं देकर अपना जीवन

धृतराष्ट्र. अश्वत्थामा को
क्या छोड़ दिया कृष्ण ने ?

विदुर. छोड़ दिया !

केवल भ्रूण हत्या का शाप
उसे दिया और
उससे मणि ले ली—
मणि देकर लेकर शाप
खिन्न-मन अश्वत्थामा
नतमस्तक चला गया !

युयुत्सु. [जिस पर कोई भावनात्मक प्रतिक्रिया लक्षित नहीं होती]
मुझको आशंका है

माता गान्धारी
सुन पराजय अपने अश्वत्थामा की
जाने क्या कर डालें !

धृतराष्ट्र. चलो विदुर
आगे गई हैं वे !
मैं भी धीरे-धीरे आता हूं !

[पहले तेजी से विदुर, फिर धृतराष्ट्र और युयुत्सु उधर जाते हैं जिधर गान्धारी गई है। पर्दा खुलकर अन्दर का दृश्य। संजय, गान्धारी और विदुर]

संजय. यही वह स्थल है

यहीं कहीं हुए थे धराशायी महाराज दुर्योधन !
यह है स्वर्ण शिरस्त्राण
यह है गदा उनकी
यह है कवच उनका

[गान्धारी पट्टी उतार देती है। एक-एक वस्तु को टटोल-टटोल कर देखती है। कवच पर हाथ करते हुए रो पड़ती है।]

विदुर. माता धैर्य धारण करें !
कवच यह मिथ्या था

केवल स्वयम् किया हुआ
मर्यादित आचरण कवच है
जो व्यक्ति को बचाता है
माता……

[सहसा गान्धारी नेपथ्य की ओर देखती हैं।]

गान्धारी. कौन है वह,
झाड़ी के पास मौन बैठा हुआ,
कोई जीवित व्यक्ति ?

विदुर. माता,
उधर मत देखें, मत देखें,

गान्धारी. लगता है जैसे अश्वत्थामा

संजय. नहीं, नहीं
इतना कुरूप
अंग-अंग गला कोढ़ से
रोगी कुत्तों सा दुर्गन्धयुक्त

गान्धारी. लौटा जा रहा है !
वह कौन है विदुर ?
रोको !

विदुर. (माता उसे जाने दें
वह अश्वत्थामा है

दण्ड उसे दिया भ्रूण-हत्या का कृष्ण ने

शाप दिया उसको
कि जीवित रहेगा वह
लेकिन हमेशा जख्म ताज़ा रहेगा
प्रभु-चक्र का उसके तन पर
रक्त सना घूमेगा
गहन वनों में युगयुगान्तर तक

अंगों पर फोड़े लिये
गले हुए जख्मों से चिपटी हुई पट्टियाँ
पीप, थूक, कफ़ से सना जीवित रहेगा वह

मरने नहीं देंगे प्रभु ! लेकिन अगणित रौरव की
पीड़ा जगती रहेगी रोम रोम में ।)

गान्धारी. संजय उसे रोको !
लोहा मैं लूंगी आज कृष्ण से उसके लिये

संजय. माता वह चला गया
आया था शायद विदा लेने
दुर्योधन के अन्तिम अस्थिशेषों से

गान्धारी. अस्थिशेष ?
तो क्या वह पड़ा है
कंकाल मेरे पुत्र का।

विदुर. धैर्य धरो माता !

गान्धारी. [हृदयविदारक स्वर में]
तो, वह पड़ा है कंकाल मेरे पुत्र का

किया है यह सब कुछ कृष्ण
तुमने किया है यह

सुनो !
आज तुम भी सुनो
मैं तपस्विनी गान्धारी
अपने सारे जीवन के पुण्यों का
अपने सारे पिछले जन्मों के पुण्यों का
बल लेकर कहती हूँ
कृष्ण सुनो !

तुम यदि चाहते तो रुक सकता था युद्ध यह।

मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह
इंगित पर तुम्हारे ही भीम ने अधर्म किया
क्यों नहीं तुमने वह शाप दिया भीम को
जो तुमने दिया निरपराध अश्वत्थामा को

तुमने किया है प्रभुता का दुरुपयोग

यदि मेरी सेवा में बल है
संचित तप में धर्म है
तो सुनो कृष्ण

प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे

प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।

[वंशी-ध्वनि। कृष्ण की छाया]

कृष्ण-ध्वनि. माता!
प्रभु हूँ या परात्पर
पर पुत्र हूँ तुम्हारा तुम माता हो।

मैंने अर्जुन से कहा
सारे तुम्हारे कर्मों का पाप-पुण्य, योगक्षेम मैं
वहन करूँगा अपने कंधों पर

(अठ्ठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूँ करोड़ों बार

जितनी बार जो भी सैनिक धराशायी हुआ
कोई नही था
वह मैं ही था
गिरता था घायल होकर जो रणभूमि में।

अश्वत्थामा के अंगों से
रक्त, पीप, स्वेद बन कर बहूँगा
मैं ही युग युगान्तर तक
जीवन हूँ मैं
तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ!
शाप यह तुम्हारा स्वीकार है।)

गान्धारी. यह क्या किया तुमने

[फूटकर रोने लगती है]

रोई नहीं मैं अपने
सौ पुत्रों के लिये
लेकिन कृष्ण तुम पर
मेरी ममता अगाध है।
कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार
तो क्या मुझे दुख होता।
मैं थी निराश, मैं कटु थी,
पुत्रहीना थी।

कृष्ण-ध्वनि. ऐसा मत कहो
माता !

जब तक मैं जीवित हूँ
पुत्रहीना नहीं हो तुम।

प्रभु हूँ या परात्पर
पर पुत्र हूँ तुम्हारा
तुम माता हो।

गान्धारी. [रोते हुये]
मैंने क्या किया विदुर ?
मैंने क्या, किया ?

कथा-गायन

स्वीकार किया यह शाप कृष्ण ने जिस क्षण से
उस क्षण से ज्योति सितारों की पड़ गई मन्द
युग युग की संचित मर्यादा निष्प्राण हुई
श्रीहीन हो गये कवियों के सब वर्ण-छन्द

यह शाप सुना सबने पर भय के मारे
माता गान्धारी से कुछ नहीं कहा
पर युग-सन्ध्या की कलुषित छाया जैसा
यह शाप सभी के मन पर टँगा रहा।

[पटाक्षेप]

पाँचवाँ अंक

विजय : एक क्रमिक आत्महत्या

कथा-गायन

दिन, हफ़्ते, मास, बरस बीते : ब्रह्मास्त्रों से झुलसी धरती
यद्यपि हो आई हरी भरी
अभिषेक युधिष्ठिर का सम्पन्न हुआ, फिर से पर पा न सकी
खोई शोभा कौरव-नगरी।

सब विजयी थे लेकिन सब थे विश्वास-ध्वस्त
थे सूत्रधार ख़ुद कृष्ण किन्तु थे शाप-ग्रस्त
इस तरह पांडव-राज्य हुआ आरम्भ पुण्यहत, अस्तव्यस्त

थे भीम बुद्धि से मन्द, प्रकृति से अभिमानी
अर्जुन थे असमय वृद्ध, नकुल थे अज्ञानी
सहदेव अर्द्धविकसित थे शैशव से अपने
थे एक युधिष्ठिर
जिनके चिन्तित माथे पर
थे लदे हुए भावी विकृत युग के सपने।

थे एक वह जो समझ रहे थे क्या होगा
जब शापग्रस्त प्रभु का होगा देहावसान
जो युग हम सब ने रण में मिल कर बोया है
जब वह अंकुर देगा ढँक लेगा सकल ज्ञान

सीढ़ी पर बैठे घुटनों पर माथा रक्खे
अक्सर डूबे रहते थे निष्फल चिन्तन में
देखा करते थे सूनी सूनी आँखों से
बाहर फैले फैले निस्तब्ध तिमिर घन में

[पर्दा उठता है। दोनों बूढ़े प्रहरी पीछे खड़े हैं। आगे युधिष्ठिर !]

युधिष्ठिर. ऐसे भयानक महायुद्ध को
अर्द्धसत्य, रक्तपात, हिंसा से जीत कर
अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव करना
यह भी यातना ही है,

जिनके लिए युद्ध किया है
उनको यह पाना कि वे सब कुटुम्बी अज्ञानी है,
जड़ हैं, दुर्विनीत हैं, या जर्जर हैं,

सिंहासन प्राप्त हुआ है जो
यह पाना कि उसके पीछे अन्धेपन कीं
अटल परम्परा है;

जो हैं प्रजायें
यह पाना कि वे पिछले शासन के
विकृत साँचे में हैं ढली हुई

और,
खिड़की के बाहर गहरे अन्धियारे में
किसी ऐसे भावी अमंगल युग की आहट पाना
जिसकी कल्पना ही थर्रा देती हो,

फिर भी
जीवित रहना, माथे पर मणि धारण करना
वधिक अश्वत्थामा का, यातना यह वह है
बन्धु दुर्योधन !
जिसको देखते हुए तुम कितने भाग्यशाली थे
कि पहले ही चले गए।

बाकी बचा मैं
देखने को अँधियारे में निर्निमेष भावी अमंगल युग

किसको बताऊँ किन्तु,
मेरे ये कुटुम्बी अज्ञानी हैं, जड़ हैं, दुर्विनीत हैं,
या जर्जर हैं।

[नेपथ्य में गर्जन]

शायद फिर भीम ने किसी का अपमान किया।

[भीम का अट्टहास]

यह है मेरा
ह्रासोन्मुख कुटुम्ब,
जिसे कुछ ही वर्षों में बाहर घिरा हुआ
अँधेरा निगल जायेगा,
लेकिन जो तन्मय है भीम के
अमानुषिक विनोदों में।

[अन्दर से सब का कई बार समवेत अट्टहास। विदुर तथा कृपाचार्य का प्रवेश।]

विदुर. महाराज
अब हो चला है असहनीय

कैसे रुकेगा
विद्रूप यह भीम का ?

युधिष्ठिर. अब क्या हुआ विदुर ?

विदुर. वही,
प्रतिदिन की भाँति
आज भी युयुत्सु का
अपमान किया भीम ने

कृपाचार्य. और सब ने उसके
गूंगेपन का आनन्द लिया।

युधिष्ठिर. पता नहीं क्या हो गया है
युयुत्सु की वाणी को।
अब तो वह बिल्कुल ही गूंगा है।

विदुर. पिछले कई वर्षों से
उसको घृणा ही मिली अपने परिवार से
प्रजाओं से

उसकी थी अटल आस्था कृष्ण पर
पर वे शापग्रस्त हुए

कृपाचार्य. आश्रित था आप का

पर भीम की कटूक्तियों से मर्माहत होकर
जब अन्धे धृतराष्ट्र और गान्धारी
वन में चले गए
उस दिन से वाणी उसकी बिल्कुल ही जाती रही।

युधिष्ठिर. भोगी है उसने ही यातना

अपने ही बन्धुजनों के विरुद्ध
जीवन का दॉव लगा देना,
पर अन्त में विश्वास टूट जाना,
लांछन पाना,
और वह भी न कर पाना
किया जो नरपशु अश्वत्थामा ने

[पुनः भीम का गर्जन]

कृपाचार्य. महाराज
चल कर अब आप ही
आश्वासन दें युयुत्सु को !

[युधिष्ठिर और उनके साथ विदुर तथा कृपाचार्य अन्दर जाते हैं । प्रहरी आगे आकर वार्तालाप करने लगते हैं]

प्रहरी १. कोई विक्षिप्त हुआ

प्रहरी २. कोई शापग्रस्त हुआ

प्रहरी १. हम जैसे पहले थे

प्रहरी २. वैसे ही अब भी हैं

प्रहरी १. शासक बदले

प्रहरी २. स्थितियाँ बिल्कुल वैसी हैं

प्रहरी १. इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे

प्रहरी २. अन्धे थे...

प्रहरी १. ...लेकिन वे शासन तो करते थे
ये तो सन्तज्ञानी हैं

प्रहरी २. शासन करेंगे क्या ?

प्रहरी १. जानते नहीं हैं ये प्रकृति प्रजाओं की

प्रहरी २. ज्ञान और मर्यादा

प्रहरी १. उनका करें क्या हम ?

प्रहरी २. उनको क्या पीसेंगे ?

प्रहरी १. या उनको खायेंगे ?

प्रहरी २. या उनको ओढ़ेंगे ?

प्रहरी १. या उन्हें बिछायेंगे ?

प्रहरी २. हमको तो अन्न मिले

प्रहरी १. निश्चित आदेश मिलें

प्रहरी २. एक सुदृढ़ नायक मिले

प्रहरी १. अन्धे आदेश मिलें

प्रहरी २. नाम उन्हें चाहे हम युद्ध दें या शान्ति दें।

प्रहरी १. जानते नहीं हैं ये प्रकृति प्रजाओं की।

[अन्दर से युयुत्सु को आता देख कर प्रहरी चुप हो जाते हैं और पहले व तरह पीछे जाकर विंग्स में खड़े हो जाते हैं। युयुत्सु अर्द्धविक्षिप्त की सी करुणोत्प दक चेष्टाएँ करता हुआ दूसरी ओर निकल जाता है। क्षण भर बाद विदुर औ कृपाचार्य प्रवेश करते हैं।]

विदुर. तुमने क्या देखा युयुत्सु को ?

[प्रहरी नेपथ्य की ओर संकेत करते हैं।]

कृपाचार्य. वह भी अभागा है
भटक रहा है राजमार्ग पर

विदुर. महलों में उसका अपमान
क्या कम होता है
जाता है बाहर
और अपमानित होने प्रजाओं से

कृपाचार्य. वह देखो !
भिखमंगे, लंगड़े, लूले, गन्दे बच्चों की
एक बड़ी भीड़ उस पर ताने कसती
पीछे-पीछे चली आती है !

विदुर. आह वह पत्थर खींच मारा किसी ने

[चिंतित हो उसी ओर जाते हैं।]

कृपाचार्य. युधिष्ठिर के राज्य में
नियति है यह युयुत्सु की
जिसने लिया था पक्ष धर्म का।

[विदुर युयुत्सु को लेकर आते हैं। मुँह से रक्त बह रहा है। विदुर उत्तरीय से रक्त पोंछते हैं, पीछे-पीछे वही गूँगा सैनिक भिखमंगा है। वह युयुत्सु को पत्थर फेंक कर मारता है और वीभत्स हँसी हँसता है।]

विदुर. प्रहरी, इस भिक्षुक को
किसने यहाँ आने दिया ?
युयुत्सु ! तुम मेरे साथ चलो

[भिखमंगा पाशविक इंगितों से कहता है इसने मेरे पाँव तोड़ दिए मैं प्रतिशोध क्यों न लूँ ?]

कृपाचार्य. पाँव केवल तोड़े तुम्हारे
युयुत्सु ने,
किंतु आज तुमको मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा।

[प्रहरी के हाथ से भाला लेकर दौड़ता है। गूँगा भागता है। युयुत्सु आगे आकर कृपाचार्य को रोकता है और भाला खुद ले लेता है और सीने पर भाला रख कर दबाते हुए नेपथ्य में चला जाता है। नेपथ्य से भयंकर चीत्कार। विदुर दौड़ कर अन्दर जाते हैं]

विदुर. [नेपथ्य से]
महाराज
कर ली आत्महत्या युयुत्सु ने

दौड़ो कृपाचार्य !

[कृपाचार्य जाते हैं। प्रहरी पुनः आगे आते हैं]

प्रहरी १. युद्ध हो या शांति हो

प्रहरी २. रक्तपात होता है

प्रहरी १. अस्त्र रहेंगे तो

प्रहरी २. उपयोग में आयेंगे ही

प्रहरी १. अब तक वे अस्त्र

प्रहरी २. दूसरों के लिए उठते थे

प्रहरी १. अब वे अपने ही विरुद्ध काम आयेंगे

प्रहरी २. यह जो हमारे अस्त्र अब तक निरर्थक थे

प्रहरी १. कम से कम उनका

प्रहरी २. आज कुछ तो उपयोग हुआ

[अन्दर समवेत अट्टहास। कृपाचार्य आते हैं।]

कृपाचार्य. इस पर भी हँसते हैं
वे सब अज्ञानी, मूढ़, दुर्विनीत, अहम्‌ग्रस्त
भाई युधिष्ठिर के

रक्त ने युयुत्सु के
लिख जो दिया है इन महलों की भूमि पर
समझ नहीं रहे हैं उसे ये आज !

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
शासन-व्यवस्था में
आत्मघात होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का

[विदुर आते हैं।]

विदुर. मुक्ति मिल जाती है सब को कभी न कभी
वह जो बन्धुघाती है
हत्या जो करता है माता की, विप्र की,
बालक की, स्त्री की,
किन्तु आत्मघाती
भटकता है अँधियारे लोकों में
सदा सदा के लिए बन कर प्रेत !

कृपाचार्य. परिणति यही थी युयुत्सु की

विदुर ! मैं युधिष्ठिर के ऊँचे महलों में
आज सहसा सुन रहा हूं
पगध्वनि अमंगल की
अब तक मैं रह कर यहाँ
शिक्षा देता रहा परीक्षित को शस्त्रों की
लेकिन अब यह जो
आत्मघाती नपुंसक ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति उभर आई है
अब तो मैं छोड़ दूं हस्तिनापुर
इसी में कुशल है विदुर !

आत्मघात उड़ कर लगता है
घातक रोगों-सा !

विदुर. किन्तु विप्र...

कृपाचार्य. नहीं ! नही !
योद्धा रहा हूं मैं
आत्मघात वाली इस
युधिष्ठिर की संस्कृति में
मैं नही रह पाऊंगा

[जाता है]

विदुर. राज्य में युधिष्ठिर के
होंगे आत्मघात

विप्र लेंगे निर्वासन

कैसी है शान्ति यह
प्रभु जो तुमने दी है ?
होगा क्या वन में सुनेंगे धृतराष्ट्र जब
यह मरण युयुत्सु का !

युधिष्ठिर. [प्रवेश कर]
प्राण हैं अभी भी शेष
कुछ-कुछ युयुत्सु में

विदुर. यदि वह जीवित हैं
तो आप उसे भेज दें
मेरी ही कुटिया में
रक्षा करूँगा, परिचर्या करूँगा
उसने जो भोगा है कृष्ण के लिये अब तक
उसका प्रतिदान जहाँ तक मैं दे पाऊँगा
दूँगा...

[विदुर और युधिष्ठिर जाते हैं। प्रकाश धीमा होता है]

प्रहरी १. कैसा यह असमय अँधियारा है।

प्रहरी २. धूम्रमेघ घिरते आते हैं वन-खण्डों से

प्रहरी १. लगता है लगी हुई है भीषण दावाग्नि।

[बातें करते करते प्रहरी नेपथ्य में चले जाते हैं।]

[अन्दर का पर्दा उठता है। जलते हुए वन में धृतराष्ट्र और संजय]

धृतराष्ट्र. जाने दो संजय
अब बचा नहीं पाओगे मुझे आज
जर्जर हूँ, आग से कहाँ तक मैं भागूँगा ?

संजय. थोड़ी ही दूर पर निरापद स्थान है
महाराज चलते चलें !

[पीछे मुड़ कर]

आह माता गांधारी
वहीं बैठ गई ।

माता, ओ माता !

धृतराष्ट्र. संजय
अब सब प्रयत्न व्यर्थ हैं !
छोड़ दो तुम मुझे यहीं,
जीवन भर मैं
अन्धेपन के अंधियारे में भटका हूं
अग्नि है नहीं, यह है ज्योतिवृत्त
देख कर नहीं यह सत्य ग्रहण कर सका तो आज
मैं अपनी वृद्ध अस्थियों पर
सत्य धारण करूंगा
अग्निमाला सा !

संजय. आग बढ़ती आती है ।
आह माता गान्धारी घिर गईं लपटों से
किसको बचाऊं मैं
हाय असमर्थ हूं !

गान्धारी. [अधजली हुई आती है ।]
संजय तुम जाओ

यह मेरा ही शाप है
दिया था जो मैंने श्रीकृष्ण को
अग्नि, आत्महत्या, अधर्म, गृहकलह में जो
शतधा हो बिखर गया है नगरों पर, वन में,

संजय
उनसे कहना

अपने इस शाप की
प्रथम समिधा मैं ही हूँ !

[नेपथ्य से पुकार 'गान्धारी !']

धृतराष्ट्र. आह !
छूट गई है वृद्धा कुन्ती वन में,
लौटो गान्धारी !

संजय. महाराज !
महाराज !
भीषण दावाग्नि अपनी
अगणित जिह्वाओं से
निगल गई होगी माँ कुन्ती को
महाराज
स्थल यह निरापद है
मत जायें !

गान्धारी. संजय !
जो जीवन भर भटके अँधियारे में
उनको मरने दो
प्राणांतक प्रकाश में

[धृतराष्ट्र को लेकर गान्धारी जाती हैं ।]

संजय. [देख कर]
आह !
पूरे का पूरा धधकता हुआ बरगद
दोनों पर टूट गिरा

फिर भी बचा हूँ शेष
फिर भी बचा हूँ शेष
लेकिन क्यों ?
लेकिन क्यों ?

मुझसा निरर्थक और होगा कौन ?
आ ऽ ऽ ऽ ह्!

[सहसा एक डाल उसके पाँव पर टूट गिरती है ! वह पाँव पकड़ कर बैठ जाता है ।]

[पीछे का पर्दा गिरता है ।]

कथा-गायन

यों गये बीतते दिन पाण्डव शासन के
नित और अशान्त युधिष्ठिर होते जाते
वह विजय और खोखली निकलती आती
विश्वास सभी घन तम में खोते जाते

[विंग्स से निकल कर प्रहरी खड़े हो जाते हैं। एक के भाले पर युधिष्ठिर का किरीट है :]

प्रहरी १. यह है किरीट
चक्रवर्ती सम्राट का !

प्रहरी २. धारण करना इसको
छोड़ दिया है

प्रहरी १. जब से
अशकुन होने लगें हैं हस्तिनापुर में !

प्रहरी २. नीचे रख दो इसको,
आते हैं महाराज !

[युधिष्ठिर और विदुर आते हैं।]

विदुर. महाराज निश्चय यह
अशकुन सम्बन्धित हैं

युधिष्ठिर. कृष्ण की मृत्यु से !

मुझको मालूम है।

दूतों ने आकर यह
सूचना मुझे दी है
कलह बढ़ गया है
यादव-कुल में !

विदुर. अर्जुन को आप शीघ्र
भेजें द्वारिकापुरी

युधिष्ठिर. विदुर
मैं करूंगा क्या ?

माता कुन्ती, गांधारी और
महाराज हो गये भस्म उस दावाग्नि में

तर्पण करने के बाद
घाव खुल गये फिर युयुत्सु के
और इतने दिनों बाद
उसका वह आत्मघात
फलीभूत होकर रहा।

प्राण नहीं उसके बचा सका
अब भी मैं जीवित रहूंगा क्या
देखने को प्रभु का अवसान
इन आँखों से ?

नही ! नहीं !
जाने दो
मुझको गल जाने दो हिमालय के शिखरों पर

विदुर. महाराज
वह भी आत्मघात है

शिखरों की ऊंचाई
कर्म की नीचता का
परिहार नहीं करती है।

यह भी आत्मघात है

युधिष्ठिर. और विजय क्या है ?

एक लम्बा और धीमा
और तिल तिल कर फलीभूत
होने वाला आत्मघात

और पथ कोई भी शेष
नहीं है अब मेरे आगे !

[बातें करते-करते दूसरी ओर चले जाते हैं। प्रहरी आगे जाते हैं।]

प्रहरी १. अशकुन तो निश्चय ही
होते हैं रोज़-रोज़

प्रहरी २. आँधी से कल
कंकड़ पत्थर की वर्षा हुई

प्रहरी १. सूरज में मुण्डहीन
काले काले कबन्ध हिलते
नज़र आते हैं

प्रहरी २. जिनको ये सब के सब
अपना प्रभु कहते थे
सुनते हैं
उनका अवसान
अब निकट ही है।

प्रहरी १. कहते हैं,
द्वारिका में
आधी रात काला
और पीला वेष

धारण किये
काल घूमा करता है।

प्रहरी २. बड़े-बड़े धनुर्धारी
वाण बरसाते हैं
पर अन्धड़ बन कर
वह सहसा उड़ जाता है

प्रहरी १. जिनको ये सबके सब
अपना प्रभु कहते हैं

प्रहरी २. जो अपने ही कन्धों पर
लेने वाले थे
इन सबका योगक्षेम

प्रहरी १. वे ही इन सबको
पथभ्रष्ट और लक्ष्यभ्रष्ट
नीचे ही त्याग कर

प्रहरी २. करते हैं तैयारी
अपने लोक जाने की

प्रहरी १. बेचारे ये सब के सब
अब करेंगे क्या ?

प्रहरी २. इन सब से तो हम दोनों
काफी अच्छे हैं

प्रहरी १. हमने नहीं झेला शोक

प्रहरी २. जाना नहीं कोई दर्द

प्रहरी १. जैसे हम पहले थे

प्रहरी २. वैसे ही अब भी हैं

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

समापन

प्रभु की मृत्यु

वंदना

तुम जो हो शब्द-ब्रह्म, अर्थों के परम अर्थ
जिसका आश्रय पाकर वाणी होती न व्यर्थ

है तुम्हें नमन ; है उन्हें नमन
करते आये जो निर्मल मन
सदियों से लीला का गायन
हरि के रहस्यमय जीवन की;
है जरा अलग यह छोटी सी
मेरी आस्था की पगडंडी

दो मुझे शब्द, दो रसानुभव, दो अलंकरण
मैं चित्रित करूँ तुम्हारा करुण रहस्य-मरण

कथा-गायन

वह था प्रभास वन-क्षेत्र, महासागर तट पर
नभचुम्बी लहरें रह रह खाती थीं पछाड़
था घुला समुद्री फेन समीर झकोरों में
वह चली हवा, वह खड़ खड़ खड़ कर उठे ताड़

थी वनतुलसी की गंध वहाँ, था पावन छायामय पीपल
जिसके नीचे धरती पर बैठे थे प्रभु शान्त, मौन, निश्चल

लगता था कुछ कुछ थका हुआ वह नील मेघ सा तन साँवल
माला के सब से बड़े कमल में बची एक पंखुरी केवल

पीपल के दो चंचल पातों की छायाएं
रह रह उनके कंचन माथे पर हिलती थीं
वे पलकें दोनो तन्द्रालस थी अधखुल थीं
जो नील कमल की पाँखुरियों सी खिलती थीं

अपनी दाहिनी जाँघ पर रख
मृग के मुख जैसा बाँया पग
टिक गये तने से, ले उसाँस
बोले 'कैसा विचित्र था युग!'

अश्वत्थामा. [पर्दा खुलता है। भयंकरतम रूप वाला अश्वत्थामा प्रवेश करता है।]

झूठे हैं ये स्तुति-वचन, ये प्रशंसा वाक्य
कृष्ण ने किया है वही
मैंने किया था जो पांडव शिविर में
सोया हुआ या नशे में डूबा व्यक्ति
होता है एक सा
उसने नशे में डूबे अपने बन्धुजनों की
की है व्यापक हत्या

देख अभी आया हूं
सागर तट की उज्ज्वल रेती पर
गाढ़े गाढ़े काले खून में सने हुए
यादव योद्धाओं के अगणित शव बिखरे हैं
जिनको मारा है खुद कृष्ण ने

उसने किया है वही
मैंने जो किया था उस रात

फ़र्क इतना है
मैंने मारा था शत्रुओं को
पर उसने अपने ही वंश वालों को मारा है।

वह है अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठा वहाँ
शक्तिक्षीण, तेजहीन, थका हुआ

उससे पूछूँगा मैं
यह जो करोड़ों यमलोकों की यातना
कुतर रही है मेरे मांस को
क्यों ये जख्म फूट नहीं पड़ते हैं
उसके कमलतन पर ?

[पीछे की ओर से चला जाता है। एक ओर से संजय घसिटता हुआ आता है।]

संजय· मैंने कहा था कभी
मुझको मत बाँहें दो फिर भी मैं घेरे रहूँगा तुम्हें
मुझको मत नयन दो फिर भी देखता रहूँगा
मुझको मत पग दो लेकिन तुम तक मैं
पहुँच कर रहूँगा प्रभु !
आज वह सारा अभिमान मेरा टूट गया

जीवन भर रहा मैं निरपेक्ष सत्य
कर्मों में उतरा नहीं
धीरे-धीरे खो दी दिव्य-दृष्टि
उस दिन वन के उस भयानक अग्निकांड में
घुटने भी झुलस गये !

[पीछे की ओर बिम्ब के पास एक व्याध आकर बैठ जाता है और तीर चढ़ा कर लक्ष्य-संधान करता है।]

कथा-गायन

धीमे स्वरों में

कुछ दूर कंटीली झाड़ी में
छिप कर बैठा था एक व्याध
प्रभु के पग को मृग-वदन समझ
धनु खींच लक्ष्य था रहा साध।

संजय. [सहसा उधर देखकर]
ठहरो ओ ठहरो!
आह! वह सुनता नहीं
ज्योति बुझ रही है वहाँ
कैसे मैं पहुंचूं अश्वत्थ वृक्ष के नीचे
घिसट-घिसट कर आया हूं सैकड़ों कोस.........

[व्याध तीर छोड़ देता है। एक ज्योति चमक कर बुझ जाती है। बंशी की एक तान हिचकियों की तरह तीन बार उठ कर टूट जाती है। अश्वत्थामा का अट्टहास। संजय चीत्कार कर अर्द्धमूर्छित सा गिर जाता है। अन्धेरा......]

कथा-गायन

बुझ गये सभी नक्षत्र, छा गया तिमिर गहन
वह और भयंकर लगने लगा भयंकर वन
जिस क्षण प्रभु ने प्रस्थान किया
द्वापर युग बीत गया उस क्षण
प्रभुहीन धरा पर आस्थाहत
कलियुग ने रक्खा प्रथम चरण
वह और भयंकर लगने लगा भयंकर वन।

[अश्वत्थामा का प्रवेश]

अश्वत्थामा. केवल मैं साक्षी हूं
मैंने ताड़ों के झुरमुट से छिप कर देखी है
उसकी मृत्यु

तीखी नुकीली तलवारों से
झोकों में हिलते, ताड़ के पत्ते
मेरे पीप भरे जख्मों को चीर रहे थे
लेकिन साँसें साधे मैं खड़ा था मौन।

[सहसा आर्तस्वर में]

लेकिन हाय मैंने यह क्या देखा
तलवों में वाण बिंधते ही
पीप भरा दुर्गंधित नीला रक्त
वैसा ही बहा
जैसा इन जख्मों से अक्सर बहा करता है
चरणों में वैसे ही घाव फूट निकले......

सुनो मेरे शत्रु, कृष्ण सुनो !
मरते समय क्या तुमने इस नरपशु अश्वत्थामा को
अपने ही चरणों पर धारण किया
अपने ही शोणित से मुझको अभिव्यक्त किया ?
जैसे सड़ा रक्त निकल जाने से
फोड़े की टीस पटा जाती है
वैसे ही मैं अनुभव करता हूँ विगत शोक
यह जो अनुभूति मिली है
क्या यह आस्था है ?
यह जो अनुभूति मिली है
क्या यह आस्था है ?

युयुत्सु. [युयुत्सु का दूरागत स्वर]
सुनता हूँ किसका स्वर इन अंधलोकों में
किसको मिली है नई आस्था ?
नरपशु अश्वत्थामा को ?

[अट्टहास]

आस्था नामक यह घिसा हुआ सिक्का
अब मिला अश्वत्थामा को

जिसे नक़ली और खोटा समझकर मैं
कूड़े पर फेंक चुका हूं वर्षों पहले !

संजय. यह तो है वाणी युयुत्सु की
अन्धे प्रेतों की तरह भटक रहा जो अन्तरिक्ष में

[युयुत्सु अन्धे प्रेत के रूप में प्रवेश करता है]

युयुत्सु. मुझको आदेश मिला
'तुम हो आत्मघाती, भटकोगे अन्ध लोकों में !'

धरती से अधिक गहन अन्ध लोक कहां है ?

पैदा हुआ मैं अन्धेपन से
कुछ दिन तक कृष्ण की झूठी आस्था के
ज्योतिवृत्त में भटका
किन्तु आत्महत्या का शिलाद्वार खोल कर
वापस लौटा मैं अन्धी गहन गुफ़ाओं में !

आया था मैं भी देखने
यह महिमामय मरण कृष्ण का
जीकर वह जीत नहीं पाया अनास्था को
मरने का नाटक रचकर वह चाहता है
बांधना हमको

लेकिन मैं कहता हूं
वंचक था, कायर था, शक्तिहीन था वह
बचा नहीं पाया परीक्षित को या मुझको
चला गया अपने लोक,
अंधे युग में जब जब शिशु भविष्य मारा जायेगा ब्रह्मास्त्र से
तक्षक डसेगा परीक्षित को
या मेरे जैसे कितने युयुत्सु
कर लेंगे आत्मघात
उनको बचाने कौन आयेगा
क्या तुम अश्वत्थामा ?
तुम तो अमर हो ?

अश्वत्थामा. किंतु मैं हूं अमानुषिक अर्द्धसत्य
तर्क जिसका है घृणा और स्तर पशुओं का है

युयुत्सु. तुम संजय
तुम तो हो आस्थावान ?

संजय. पर मैं तो हूं निष्क्रिय,
निरपेक्ष सत्य !
मार नहीं पाता हूं
बचा नहीं पाता हूं
कर्म से पृथक
खोता जाता हूं क्रमशः
अर्थ अपने अस्तित्व का !

युयुत्सु. इसीलिये साहस से कहता हूं
नियति है हमारी बंधी प्रभु के मरण से नहीं
मानव-भविष्य से;
परीक्षित के जीवन से !
कैसे बचेगा वह ?
कैसे बचेगा वह ?

मेरा यह प्रश्न है
प्रश्न उसका जिसने
प्रभु के पीछे अपने जीवन भर
घृणा सही !

कोई भी आस्थावान शेष नहीं है
उत्तर देने को ?

[वृद्ध याचक हाथ में धनुष लिए प्रवेश करता है ।]

व्याध. मैं हूं शेष उत्तर देने को अभी

युयुत्सु. तुम हो कौन ?
दीख नहीं पड़ता है !

व्याध. अब मैं वृद्ध व्याध हूँ
नाम मेरा जरा है
वाण है वह मेरे ही धनुष का
जो मृत्यु बना कृष्ण की

पहले मैं था वृद्ध ज्योतिषी
वध मेरा किया अश्वत्थामा ने
प्रेत-योनि से मुक्त करने को मुझे, कहा कृष्ण ने—
'हो गई समाप्त अवधि माता गांधारी के शाप की
उठाओ धनुष
फेंको वाण।'

मैं था भयभीत किन्तु वे बोले—
'अश्वत्थामा ने किया था तुम्हारा वध
उसका था पाप, दण्ड मैं लूंगा
मेरा मरण तुमको मुक्त करेगा प्रेतकारा से।'

अश्वत्थामा. मेरा था पाप
किया मैंने वध
किन्तु हाथ मेरे नहीं थे वे
हृदय मेरा नहीं था वह
अन्धा युग पैठ गया था मेरी नस-नस में
अन्धी प्रतिहिंसा बन
जिसके पागलपन में मैंने क्या किया
मुझे ज्ञात नहीं
केवल अज्ञात एक प्रतिहिंसा
मेरे बदन पर जख्मों की तरह फूट पड़ी
जिसको तुम कहते हो प्रभु
वह था मेरा शत्रु
पर उसने मेरी पीड़ा भी धारण
कर ली
जख्म हैं बदन पर मेरे
लेकिन पीड़ा सब शान्त हो गई बिल्कुल

मैं हूँ दण्डित
लेकिन मुक्त हूँ !

युयुत्सु. होती होगी वधिकों की मुक्ति
प्रभु के मरण से

किन्तु रक्षा कैसे होगी अन्धे युग में
मानव-भविष्य की
प्रभु के इस कायर मरण के बाद ?

अश्वत्थामा. कायर मरण ?
मेरा था शत्रु वह
लेकिन कहूँगा मैं
दिव्य शान्ति छाई थी
उसके स्वर्णमस्तक पर !

वृद्ध. बोले अवसान के क्षणों में प्रभु—
"मरण नहीं है ओ व्याध !
मात्र रूपांतरण है यह
सबका दायित्व लिया मैंने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंप जाता हूँ मैं सबको
अब तक मानव-भविष्य को मैं जिलाता था।
लेकिन इस अंधे युग में मेरा एक अंश
निष्क्रिय रहेगा, आत्मघाती रहेगा
और विगलित रहेगा
संजय, युयुत्सु, अश्वत्थामा की भाँति
क्योंकि इनका दायित्व लिया है मैंने !"

बोले वे—

"लेकिन शेष मेरा दायित्व लेंगे
बाक़ी सभी......
मेरा दायित्व वह स्थित रहेगा
हर मानव-मन के उस वृत्त में
जिसके सहारे वह

सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वंसों पर !
मर्यादायुक्त आचरण में
नित नूतन सृजन में
निर्भयता के
साहस के
ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूंगा मैं बार बार !"

अश्वत्थामा. उसके इस नये अर्थ में
क्या हर छोटे से छोटा व्यक्ति
विकृत, अर्द्धबर्बर, आत्मघाती, अनास्थामय,
अपने जीवन की सार्थकता पा जायेगा ?

वृद्ध. निश्चय ही !
वे हैं भविष्य
किन्तु हाथ में तुम्हारे हैं।
जिस क्षण चाहो उनको नष्ट करो
जिस क्षण चाहो उनको जीवन दो, जीवन लो।

संजय. किन्तु मैं निष्क्रिय अपंगु हूं !

अश्वत्थामा. मैं हूं अमानुषिक !

युयुत्सु. और मैं हूं आत्मघाती अन्ध !

[वृद्ध आगे आता है। शेष पात्र धीरे-धीरे पीछे हटने लगते हैं। उन्हें छिपाते हुए पीछे का पर्दा गिरता है। अकेला वृद्ध मंच पर रहता है।]

वृद्ध. वे हैं निराश
और अन्धे
और निष्क्रिय
और अर्द्धपशु

और अन्धियारा गहरा और गहरा होता जाता है !
क्या कोई सुनेगा
जो अन्धा नहीं है, और विकृत नहीं है, और
मानव भविष्य को बचायेगा ?

मैं हूँ जरा नामक व्याध
और रूपान्तरण यह हुआ मेरे माध्यम से
मैंने सुने हैं ये अन्तिम वचन
मरणासन्न ईश्वर के
जिसको मैं दोनों बाँहें उठाकर दोहराता हूँ

कोई सुनेगा ?
क्या कोई सुनेगा ?
क्या कोई सुनेगा............

[आगे का पर्दा गिरने लगता है।]

कथा-गायन

उस दिन जो अन्धा युग अवतरित हुआ जग पर
बीतता नहीं रह रह कर दोहराता है
हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं
हर क्षण अन्धियारा गहरा होता जाता है

हम सब के मन में गहरा उतर गया है युग
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की,
अन्धा संशय है, लज्जाजनक पराजय है!

पर एक तत्व है बीजरूप स्थित मन में
साहस में, स्वतंत्रता में, नूतन सर्जन में,
वह है निरपेक्ष उतरता है पर जीवन में
दायित्व-युक्त, मर्यादित, मुक्त आचरण में

उतना जो अंश हमारे मन का है
वह अर्द्ध-सत्य से, ब्रह्मास्त्रों के भय से,
मानव-भविष्य को हर दम रहे बचाता
अन्धे संशय, दासता, पराजय से!

[समाप्त]

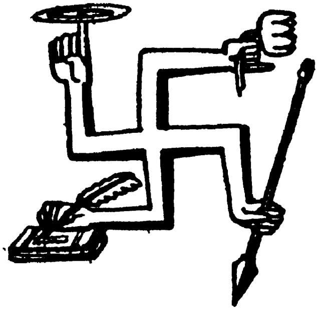

भारती की
अन्य कृतियाँ

●

उपन्यास	गुनाहों का देवता
	सूरज का सातवाँ घोड़ा
कहानियाँ	चाँद और टूटे हुए लोग
कविताएं	ठण्डा लोहा
	तीन गीतवर्ष (यन्त्रस्थ)
नाटक	नदी प्यासी थी
समीक्षा	सिद्ध साहित्य
	प्रगतिवाद : एक समीक्षा
अनुवाद	पाश्चात्य नई कविता (यन्त्रस्थ)
	आस्करवाइल्ड की कहानियाँ

किताब महल
से प्राप्य